राधा विरह

(महाकाव्य)



कवि चूड़ामणि श्रीकाशीकान्त मिश्र 'मधु



नबरत्न ग्रन्थ मालाक २४म पुष्प

राधा-विरह

प्रणेता
कवि चूड़ामणि श्रीकाशीकान्तमिश्र 'मधुप'

प्रकाशक
हरिनन्दन सिंह स्मारक निधि
राघोपुर, पुवारि ड्योढ़ी,
दरभंगा

प्रथम संस्करण—१०००

प्रकाशन वर्ष—१९६९ ई०

15·00
मूल्य—१०) दस टाका मात्र

आवरण शिल्पी—श्रीउदयकान्त चौधरी. चानपुरा, दरभंगा

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान—शतदल संघ, बहेड़ा, दरभंगा,
नवरत्न गोष्ठी, मिश्र टोला, दरभंगा,
ग्रन्थालय, टावर चौक, दरभंगा
शिक्षा सदन, सुपौल, सहर्षा

मुद्रक—श्रीनिर्भयराघव मिश्र, बी० ए० बी० एल०
नव भारत प्रेस, लहेरियासराय
दरभंगा

अनुपम ओ पराकोटिक प्रतीक बनलि छथि। भक्त-साधकक साधना-क्षेत्रक रासेश्वरी कविक कल्पना-काननमे रसेश्वरी रूपमे मञ्जरित भय दिग्‌युगान्तकेँ सुरभित कय रहलि छथि।

संसारक कोनो भाषा-साहित्यमे राधाक तुलना नहि। विश्वक कोनो नायिकामे राधाक चरणधूलिक स्पर्शक क्षमता नहि। 'खितितल लावनि सार'सँ जनिक रचना, जनिक रूपराशिक निर्माणोत्तर विधि-शिल्पीक हाथक धोइनिसँ 'जल भयो चंद करभारे भए तारे हैं'क कल्पना, स्वयं भगवान् श्यामसुन्दरकेँ 'जा तनकी भांई परे स्याम हरितद्युति होय' वर्णना, 'आधक आध आध दिठि अंचल'सँ जनिक 'निकसत प्रान'क उद्दीपना 'आँखिर निमिषे यदि नाइ देखि' प्राणपातक संभावना, 'श्वसितेन दावदहनज्वाला कलापायते' जनिकर विरह-निदर्शना, 'कृष्ण सुख हेतुमात्र कृष्णेर सम्बन्ध'क उदात्त प्रेमप्रेरणा, एहन रूपमयी, भावमयी, रसमयी, राधिकाक दिव्य सृष्टि भारतीय साहित्यक चमत्कार-परिष्कार थिक। ताही सँ कवीन्द्र रवीन्द्रकेँ विश्वव्यापी प्रश्न पूछय पड़लन्हि—

"सत्यकरे कहो मोरे हे वैष्णव कवि !
कोथा तुमि पेये छिले एइ प्रेमच्छवि ?"

भारतीय काव्य साहित्यक आधेयाधार राधिका मृण्मयी मूर्त्ति नहि, चिन्मयी चेतना छथि; रूपमयी रेखा नहि, भावमयी बिन्दु-परिवेषे छथि; श्यामघनक छलनामयी 'बिजुरी रेहे' नहि, अन्तर्भाविनी 'कनक रेख' छथि—सद्यः 'सदेह सिनेह' छथि। यदि साहित्यक शृंगारनायकसँ रूप-सिनेहक नायिका राधिका केँ चिर विच्छेद कय देल जाय तँ वास्तवमे काव्य-संसार उजड़ि जायत ! कल्पनाकाशमे एहि चन्द्रलेखाक अस्तसँ दूर-दुरस्त नखतक भगजोगनी भने कने-मने झलमलाइत-झलफलाइत रहौ, किन्तु निश्चय थिक रसोज्ज्वल पूर्णिमा अन्ध अमामे बदलि जायत ! राधा वास्तवमे भारतीय काव्य-संसारक आधार छथि, राधाक प्रेम-विरह रस-

शृंगारक सार अछि जाहि विनु विरह काव्यक रस, भ्रमर गीतक स्वर, हंस-भृंग-चकोर दूतक सन्देश, कला-वीथीक रंग-टीप, छवि-प्रतिमाक शिला-शैली, सभ मेटा जायत, बिला जायत। कला-मण्डपक वैभवशाली कक्ष ढहि ढनमना जायत ! तेँ श्वास जेना जीवनक, प्रकाश जेना आवासक, श्रद्धा जेना विश्वासक हेतु अनिवार्य, अपरिहार्य, तहिना राधाक विरह-सघन वेदना कला-कल्पनाक लेल अविच्छेद्य अविभेद्य।

आइ एही मधु आधार केँ नव-नियोजित करबाक उद्देशेँ मैथिलीक ख्यातनामा रससिद्ध कवि 'मधुप' अपन जीवन-साधनाक समग्र रस लय, 'राधा विरह'क अपूर्व मधुकोष मैथिलीभाषी रस-पिपासुक परितृप्तिक हेतु उन्मुक्त कयलन्हि अछि। एहि महत्त्वपूर्ण, विरह-रहस्यमय, रसमय महाकाव्यकेँ प्रकाशित देखि, मैथिलीजगत् वस्तुतः कृतार्थ होयत—मैथिलीक कृष्णकाव्य-परम्परा पुनि एहि अपूर्व रचनासँ गौरव-मण्डित होयत।

साहित्यक सार अछि रस। रसक सार थिक शृंगार,शृंगारक सार होइछ विरह; ओहो ककर तँ रसेश्वरी-रासेश्वरी, पराप्रकृति, चिर-विधुरा राधिकाक। ताहूपर भाषा मधुमयी मैथिली। गद्य नहि पद्य, सेहो मुख्यतः गीतात्मक। तकरहु शिल्पी करुण-कणक रसोच्चयी स्वयं 'मधुप' जी; अक्षर-अक्षरमे अनुप्रास,पद-पदमे यमक, वाक्य-वाक्यमे रस टपकैत—'सद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः।'

'राधाविरह' सत्रह सर्गमे विभाजित, ९९६ छन्द ओ कतिपय गीतमे ग्रथित, रसोज्ज्वल, मैथिलीक एक अभिनव महाकाव्य थिक। कथावस्तु पुराण-प्रसिद्ध कृष्णक मथुरागमनकेँ केन्द्रित कय विस्तृत भेल अछि। भागवतक रासपञ्चाध्यायी, वेणुगीत, गोपीगीत; हरिवंशक आंशिक गाथा एवं ब्रह्मवैवर्तक राधातत्त्वक पौराणिक ख्यात-वृत्तसँ वस्तुतत्त्व प्रस्तुत करबाक उपक्रममे कविक मौलिक भावना सेहो अनेक स्थलमे लक्षित होयत। मदन-मानमर्दनक अभिनव प्रसंग कविक स्वतः स्फूर्त कल्पनासँ उत्पाद्य अछि महा-रासक पूर्व कृष्णक अनासक्तियोग योगेश्वरक व्यक्तित्वक अनुरूपे कल्पित भेल अछि। उद्धवक प्रति राधाक उक्तिमे नारीक प्रति पुरुष समाजक दृष्टिकोणक उद्भावन नवीन नारी–जागरणक प्रतीक रूपमे प्रस्तावित अछि। कृष्णक पूर्वचरित्रक आलोचनामे प्रस्तुत पद्य सभ विविध भङ्गिमासँ तीव्र तीव्रतर होइतहुँ पुनि भारतीय नारी हृदयक उदारतामे अत्यन्त मधुर-स्निग्ध सिद्ध होइछ। एकाध एहनो शक्तिदीक्षा आदि रहस्यात्मक प्रसंग अछि जे कविक भक्ति भावनाभिभूत चिन्तनावेशमे स्वप्नोपलब्ध घटनापर आश्रित अछि।

महाकाव्यक नायक छथि दिव्य, धीरोदात्त, व्रजनागर, लीला पुरुष स्वयं श्रीकृष्ण; नायिका छथि प्रेमात्मिका, आह्लादिनी, चिद्रूपा, रासेश्वरी राधा, जे विरहक अखण्ड ज्वालामे कञ्चन जकाँ उत्तरोत्तर कान्तिमयी परिलक्षित होइत छथि। अङ्गी रस मधुर शृङ्गार, ताहूमे मधुरतम विप्रलम्भ। अङ्गभूत विभिन्न रस प्रसङ्ग–सङ्गत उपन्यस्त अछि। प्रकृतिभूमि व्रजक परिवेशमे महाकाव्योचित प्राकृतिक वर्णन यत्र–तत्र प्राचुर्य एवं अपूर्व सौन्दर्यें उपन्यस्त अछि। शाक्त कविक शुचि रुचि एवं भक्ति भावना स्तुति-वन्दनाक पंक्तिमे स्फुट अछि। आचार-विचार, समाज-नीति, रीति-व्यवहार, धर्म संस्कृति, आदिक विचार कतहु साक्षात्, कतहु अप्रस्तुत विधानक प्रसंगहुसँ

परोक्षरूपेँ प्रस्तुत अछि‌ए, जाहिसँ महाकाव्यक परिधि-विस्तार सार्थक सिद्ध होइछ।

प्रस्तुत महाकाव्यक विशेषता कथावस्तुक विस्तारसँ विशेष वर्णन विन्यासमे अछि। वर्णन-विन्यासक प्रशस्तता रस-परिष्कार-मे, रस-परिष्कारक चमत्कार आलङ्कारिकतामे, ओ अलङ्कार विधान अर्थानुबन्धी वर्णविन्यासमे परम्परित अछि। पुनि वर्णविन्यास-परम्परा विरहकाव्यक ध्वनितत्त्वकेँ स्तुत्य बनाय सार्थक सिद्ध होइछ।

सर्ग-निबद्ध कथावस्तु

महाकाव्यक पर्याय थिक प्रबन्ध-काव्य, जकर पट-रचना कथा-सूत्रक तानौ भरनीसँ निष्पन्न होइछ। जेना रस-रचनाक आधार थिक आलम्बन विभाव; शेष यावतो उद्दीपन वा अनुभाव-संचार ओकरे विशेषताक परिचायक रहैछ, तहिना कथा-सूत्रहिक आश्रय पर कलाक बारीकी, रस सघनता एवं प्रस्तुतिक चारुता व्यक्त होइछ जेना शर्वतक लेल रस-शर्करा ओ कला सौरभक आधार लेल मूल द्रव अनिवार्य, तहिना महाकाव्यक हेतु विषयवस्तु अपरिहार्य। अतएव राधाविरहकाव्यक कथावस्तु दिस—सर्गबन्ध महाकाव्यक सर्ग-निबद्ध वस्तुतत्त्व दिस, दृक्पात एतय अप्रासङ्गिक नहि।

प्रथम सर्ग (पृष्ठ १-१८ छन्द३८)मे प्रस्ताविकाक कतिपय पद्यक पश्चात् प्रभात वर्णन—'तही प्रभातक सरस प्रभामे.......प्रेम-कलह वश एक दिवस से हरि राधा वियोग केर पाबि, करथि प्रलाप विलाप खनहिँ' रूपमे नायकक मान-विरहकेँ देखबाक हेतु कवि राधासँ अनुरोध करैत छथि—'नयनक आधाहुक आधासँ राधा! बाधा देखह आबि।'

दोसर सर्ग (पृष्ठ १९-३८, छन्द ४७)क आरम्भ होइछ विरह-प्रवाहक दुहू कूलक सन्देश-प्रवाहिनी सखी ललिताक आलाप-लहरीसँ जे स्वयं—'अश्रुपूर्ण लोचन - तरङ्गिणी बनि गेलीह तते कनलीह। फुटवाणी न तदपि गंगा-यमुनाक बीच वाणी बनलीह ॥' सर्गक उत्तरार्धमे नारदक आगमन तथा ललिताकेँ आश्वासन दैत, विरह-समाधिलीन व्रजनाथक जागरणक हेतु स्तवनक उपक्रम—

'पुन पुनमानीसे महान मुनि आसन अपन लगाय।
हो जय जाग जनिक, तनिके जागक हित किछु मुसुकाय ॥
काय झुकाय पहुक पद-पंकज पर कय दुहु दृग बन्द।
लगला करय वन्दना लगले पीबि भक्ति-मकरन्द ॥'

तेसर सर्ग (पृ० ३९-६४, छन्द ७३)मे नारद द्वारा विविध भंगिएँ श्रीकृष्णक स्तुति ओ हुनक प्रकृतिस्थता। आगमन-प्रयोजन-जिज्ञासापर नारद द्वारा कामदेवक गर्व प्रसंगेँ श्रीकृष्ण समेत व्रज-बालापर अनङ्गक अभियान-चर्चा। उत्तरमे मर्यादापुरुष रामा-वतारमे वासनाशीला वामा लोकनिक गोपीरूपमे अवतरणक प्रसंग ओ उपक्रमान्तमे आश्वासन—

'सबकेँ योग-जनित संयोगक शाश्वत सुख हम देबे।
आ' वैरागक राग गबा मुक्तिक पथ ऊपर लेबे ॥'

चारिम सर्ग (पृ० ६५-९२, छन्द ९३)—श्रीकृष्णक मिलनोत्कंठा, मोहावस्था, तन्द्रास्वप्न, स्वप्नमे शक्तिरूपा राधाक छवि छाया, पुनि साक्षात् महाविद्या भुवनेश्वरीक दिव्य दर्शन। हुनक स्तुतिमे तन्मय श्रीकृष्ण द्वारा देवीक विविध रूप कल्पना—भिन्न-भिन्न वर्ण-जाति, पेशा-व्यवसायमे गोढ़नी, कुम्हैनि, नौआइनि,

बरैनि एवं ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्यपत्नी तथा शूद्री रूपमे चित्रण श्रवणीय दर्शनीय। एतय खबासनीक वेशमे एक झाँकी—

'नभ-पनिघटमे डुबा नखत-घट भरि भरि होइतहिँ भोर।
बेली बौआसिनि केँ दी कोकिलकंण्ठी कय सोर॥
पंखा पवन हौंकि, रवि-रिट्ठीमे अंबर सबकेर
तोँ खबासिनी भऽ ख-वासिनी खिचि शुचि करह न देर॥

पाँचम सर्ग (पृ० ९३-१०२ छन्द, ४७)—मोहापन्न श्रीकृष्णमे चेतनाक संचार, उपस्थित कर्तव्यक प्रेरणा-प्रचार श्रीकृष्णक विषाद योग, तदुत्तर काम-कामना रहित अनासक्त रास-विलासक आदेश-पुरस्सर महामाया द्वारा वीजमन्त्रक दीक्षा, एवं मन्त्र सनाथ गोकुलनाथक श्रीकुञ्ज दिस प्रस्थान—

'देखि अचंचल हरिकेँ माता अंचलसँ शिर झाँपि।
दहिना श्रुति-पुटमे श्रुति-सेवित मन्त्र दयासँ काँपि।'....
"बाद गोकुलनाथ मन्त्र-सनाथ हुनि गुण गान कय,
चलल झट श्रीकुञ्ज दिशि वृषभानुजाकेर ध्यान धय।'

छठम सर्ग (पृ० १०३-११४, छन्द ७७)—एम्हर श्रीकृष्णक लगसँ फिरलि ललिता द्वारा राधाक जिज्ञासा, राधाक स्वप्न-विरह-वर्णन, ललिता सखी द्वारा आश्वासन ओ अन्तमे 'कलधौत-लता' आ 'नीलम तरु'क सरस सन्निधान।

सातम सर्ग (पृ० ११५--१२२, छन्द ४१)—युगल-मूर्त्तिक प्रेमालाप, प्रसङ्गोपात्त श्रीकृष्ण द्वारा तन्द्रावस्थामे पूर्वदर्शित राधा एवं तद्रूपा भुवनेश्वरीक दर्शन चर्चा, उत्तारमे राधा द्वारा कर्तव्य तत्त्वक निर्देश—

'कहाँ कही हम, साधु विनाशक दुष्ट जनक नहि करु संहार।
कहाँ कही हम, अमर-मण्डली केँ न दिअबिअनु निज अधिकार।'

'करु बाहर सुधार देशक प्रभु ! हम समाजमे नारि सुधार,
करइत रहब कण्ठगत जा धरि प्राण रहत हे नन्दकुमार'

आठमसर्ग (पृ० १२३–१३३, छन्द ५२)—महारासक भूमिका, वृन्दावनी सन्ध्या जतय 'सर्ग बनल अछि केहन निसर्गक हाथैं सुन्दर आज'। चन्द्रोदय, राका-रजनी, मुरलीवादन, गोपीजनक उत्कण्ठा, प्रेमोत्सुका गोपी एवं कौतुकी कृष्णक बीच नीति-प्रेमक द्वन्द्वालाप, रसतृप्ति—

च्युत-मायाबन्धन धन-धन बनि उड़ि अच्युतमे लीन,
काम-क्रोध लोभादि वशहुँ हरि भरि हो मुक्ति प्रवीन।
एहि प्रकारैं अपन अपन तजि भवन गोपिका वृन्द,
वृन्दावन जा देखल रास–मण्डल सौन्दर्य अनन्द।'

नवमसर्ग (पृ० १३४-१४२ छन्द ७२)—श्रीकृष्णक अदृश्य-भाव, विरहवेदना, गोपी–प्रलाप, पुनर्दर्शन, प्रेम मिलन, रासपयोगी रूप-कल्पना, रसोपसंहरण, कामक गर्वभंग, श्रीकृष्णद्वारा कामकेँ आश्वासन।

'योगी जनक हृदय आसन पर बैसल रहथि सतत जे श्याम,
गोप-वधूटी मण्डलस्थ त्रिभुवन लक्ष्मीक लसित अभिराम।'
'रमित भेलाह अपरिमित काम कला कोविद जहिना की बाल,
अपने छाया केर संग क्रीडा कौतुक कय करय नेहाल।'
'एवं गणसमेत किछु विस्मित देखि प्रभुक भोगहुमे योग,
जेँ रति-रत रहितहुँ मोहन पर कामक सबटा विफल प्रयोग।'

दसमसर्ग (पृ० १४९-१६३ छन्द ७२)--प्रेषित असुर गणक संहारसँ विमन पुनि नारदवाक्यसँ प्रेरित कंस द्वारा धनुर्यज्ञ ओ मल्ल-प्रतिद्वन्द्विताक बहानासँ अक्रूरक माध्यमे बलराम-कृष्णकेँ मथुरा बजयबाक योजना। अक्रूरक मनोद्वन्द्व मथुरागमनप्रस्ताव, गोकुलक गली-गली मे सोर। नन्द-यशोदाक वात्सल्य-ममता--

'जौँ अनिवार्य जैब बूझी तँ शीघ्र देखा मथुरा दुहु वीर,
शपथ हमर, संगहि लय आयब, तेजब नहि पिजरा केर कीर।

प्यास लगैत देब निर्मल जल, ठेही बुझि पद देब दबाय,
अधिक रौद होइतहिं तरु छाया मे आरामक करब उपाय।'

विरहविह्वला राधाप्रभृति व्रजबाला तँ—

'कथा वारिनिधि मे उबडुब भय विगलित-बन्धन केश-दुकूल,
भावी विषम वियोग-वारिधिक कतउ कोनो देखल नहि कूल।'

एगारहम सर्ग (पृ० १६४-१६६ छंद २६)—दिव्यरथ पर मथुरायात्रा, कुब्जा एवं मालाकारक उद्धार, रजक कुबलयापीड़ संहार, मुष्टिक-चाणूरमर्दन, कंस-वध, माता-पिता एवं नागरिकक प्रबोधन आदि अवतार प्रयोजनक सिद्धि।

बारहम सर्ग (पृ० १७०-१७९, छन्द ८२)—'प्रति मासक दारुण दुख खीन, कृश प्रतिमा सहि नीन विहीन' राधाक विरह बाधा,' विरहिनीक पति ऋतु क विपरीत रीति, बरहमासाक निराशा भरल गीत। श्रीकृष्णक स्मृतिमे राधाक विरह-स्वरक भान, उद्दीपना, उद्धवक जिज्ञासा।

तेरहम सर्ग (पृ० १८०-१९६, छन्द ९४)—श्रीकृष्ण द्वारा गोकुल-वृन्दावनक विरह-स्मृति, श्रीकृष्णक व्रज प्रेमवर्णना, उद्धव द्वारा उपस्थित कर्त्तव्यक संबोधना, उद्धवकेँ सन्देशवाहनक भार—

'मुदा उदार-हृदय तोँ बान्धव! काल्हि गोकुला जाह,
अपन विराग राग सँ रोकह गोपिक राग प्रवाह।,

चौदहम सर्ग (पृ० १९७-२०९ छन्द ६४)—व्रजक सहज सन्ध्या, जतय—

चमकय छमकय नेरु, मकय वृष, चलि ठमकय लऽ ऊधमसार,
स्रवित दुग्ध परिपुष्ट धेनु, घंटिका रणित, साटी श्रृंगार।
गमकय तीमन मध्य देल घर-घरक छौंक, रमकय मृदु वायु,॥'
द्विजहुत हुतवह ज्वाला दमकय कम कय सकय न जैं यम आयु,

किन्तु लगले सान्ध्य आकाशमे तारकित दृश्य से जेना—

'किंवा श्रीराधाक असाधारण विरह-ज्वालामे पाकि,
गगनक देह सदेह व्रणाङ्कित, के न जैत अंकनमे थाकि।'

उद्धवक व्रजमे प्रवेश, स्वागत, नन्द-यशोदा द्वारा कुशल-जिज्ञासा, उपालम्भ—

पाकल आम भेलौंह न पा' कल विरह-बिहाड़िक जोर ततेक,
तुबि जेबै हम सह महरक, रे ! छुटि जेतै झट टीस जतेक।
मुदा हजार हजार गोपिका आ' गोपाल बालक एकान्त,
सत्य-सिनेह सिन्धु शोषित भय व्रजकेँ मरु कय करत अशान्त॥'

पन्द्रहम सर्ग (पृ० २१०--२२०, छन्द गीत २०)--उद्धव द्वारा व्रजवासी लोकनिक कृष्ण रसानुरागी लीलागीतक श्रवण, उद्धवक आगमन सुनि गोपीजनक उद्वेग।

सोड़हम सर्ग (पृ० २२१–२२७, छन्द २९)-राधाक विरहालाप,नख–प्रतिबिम्बित भ्रमरक व्याजेँ उपालम्भ-वचन।

सत्रहम सर्ग (पृ० २२८-२३९, छन्द ४७)–भ्रमरगीत, विविध भङ्गिमासँ उपालम्भ, नारी चरित्रक ओज ओ अन्तमे 'कतउ कुशलसँ रहथु' क स्वरमे सन्तोषात्मक नैराश्य, क्षमायाचना, उद्धव द्वारा सान्त्वनाक-उपरान्त राधाक दूरंगम विरहक चिन्तनामे ग्रन्थसमाप्ति।

'वास्तव' बात वियोगे उत्तम संयोगहु सँ मानी,
जकर जलन होइतहुँ अभिन्न हृदयस्थ प्रेमकेँ जानी।
सकल वस्तुमे अपन सिनेहिक मूर्ति सदच्छन देखी,
से संयोगी पौत कहाँ जे लखि गत योगिक शेखी।'

[शेष विशेष अबाधा राधा विरह समापल यत्ने।
काशीकान्त मिश्र 'मधुप'क उपनामेँ कविकुल रत्ने]

कविकर्मकेँ मनो-रास वा वाग्विलास बुझनिहार छन्द-बन्धकेँ जीवन-भोगक चटनी-अँचार बुझि छन भरि, कन भरि, स्वाद बदलबा धरि, भने आस्वाद लेथु; किन्तु जे ओकरा जीवनक साधना रूपमे स्वीकार कयने छथि हुनक तँ 'यत् यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं वाणि ! त्वदाराधनम्' सकल कर्मक-व्यवसाय मनन-अनुशीलन' एक परायण रहैछ। मधुप' जी छन्द-सरस्वतीक ओही कोटिक साधक उपासक छथि, लेखनी उठौताह तँ छन्द प्रवाहित होइत जायत। गद्यो लिखय बैसताह तँ पद्ये लिखा जायत। चिट्ठीपत्री धरिमे छन्दबन्ध, गीतक लय। एक मुखी वृत्ति, कविकर्मक एकमात्र प्रवृत्ति। यैह कारण अछि जे हिनक रचनामे माधुर्य, शब्द-सौन्दर्य, लय-प्रवाह पंक्ति-पंक्तिसँ चुबैत-टपकैत। कोनो पाँतो उठाउ, यमकक झमक, उत्प्रेक्षाक चमक एवं ध्वनिक गमक चमकैत-झनकैत !

प्रायः आइसँ २०-२१ वर्ष पूर्व राधा-विरह एक मुक्तक रूप-मे लयबद्ध भेल छल। प्रथम-प्रथम मैथिल-महासभाक सहरसा-अधिवेशन मध्य 'मधुप' जी एकर आंशिक पाठ कयने छलाह। सभा समाज मुग्ध भय स्व० राजपण्डित बलदेवमिश्रजीक प्रस्तावकत्वमे 'कविचूड़ामणिक' उपाधि प्रदान कयलक। क्रमहि एहि कथाक लोक-प्रियता बढ़ैत गैलैक एवं 'मधुपजी' एकरा निबन्ध-काव्यक रूप प्रदान कयल। अनेक सभागोष्ठीमे विरह-काव्यक खण्ड पाठ भेल अछि खण्ड काव्यक रूपमे, जे सर्वदा सबतरि आदृत होइत आयल। आइ काव्यरसिकक विस्तृत परिधिकेँ संतृप्ति देबाक उद्देश्यँ महाकाव्यक रूपमे प्रस्तुतीकरण निश्चित रूपेँ मैथिलीक काव्यभण्डारकेँ विशेष सम्भृत करत।

एहि व्यस्त युगकेँ महाकाव्यक युग नहि मानि गीतिकाव्यक युग मानल जाइछ। ओहनो व्यस्त भावुककेँ एकर अंशवाचनसँ गीतरसक आनन्द उपलब्ध होयतैन्हि। 'मधुप' जीक कविव्यक्तित्व

सदा गीतत्मक रहलन्हि अछि। वर्णन प्रधान रहने, कल्पनागुण रहने एवं अनुभूति-सरस अलङ्कार विधान रहने, एकर एक एक छन्दमे गीति काव्यक रस छैक, मुक्तकक चारु चमत्कार छैक, तेँ कार्याकुल व्यस्त सहृदय समाजहुमे ई समादृत होयत से पूर्ण आशासित अछि।

'राधा-विरह'क कवि सदा सरस्वतीक मातृत्वमे पोषित। लक्ष्मीक विमातृत्व प्रसिद्ध। अतएव महाकाव्य प्रकाशनक हेतु जे साधन अपेक्षित ताहिसँ उपेक्षिते। मैथिलीक सर्वाङ्गीण सुन्दर निधि अप्रकाशिते रहि जाइत, ई समस्या सोझराइत नहि, यदिच हरिनन्दन-स्मारक निधिक प्रतिष्ठाता बाबू श्रीकृष्णनन्दनसिंहजीक उदार प्रोत्साहन लेखककेँ प्राप्त नहि होइतन्हि। एहि हेतु निधि–संस्थान एवं ओकर उदार साहित्योन्नायक अधिष्ठाता धन्यवादार्ह छथि। संगहि आयुष्मान सुकवि श्रीअमरजी आशीर्वर्धनीय छथि जनिक सर्वात्मना सहयोगेँ ई ग्रन्थ लोकलोचनक आगाँ सर्वाङ्ग पूर्ण अर्पित भय सकल।

प्रकाशनमे एक और बाधा छल, महाकाव्यक अन्तिम सर्गक मूल कापी लेखककेँ सीवान कविगोष्ठीक यात्राक क्रममे कतहु विनष्ट भय गेल। दोबारा काव्यनिर्माण कविक हेतु ओहने विकट जेना सीमापंक्ति टुटने सैनिकक अग्रगतिक संकट। आशाक क्षीण रेखा छल, यदि उक्त बाबूसाहेबक टेप-रेकर्डमे गृहीत ध्वनिसँ प्रतिलिपि प्रस्तुत कयल जाय। दुर्भाग्य जे अनेक प्रयास कयलहु पर प्राचीन टेप उपलब्ध नहि भय सकल। अन्तमे कविकेँ निरस्त भय पुनः सारस्वत साधनामे संलग्न होमय पड़लन्हि, किन्तु आश्चर्य जे साधनाक अन्तिम क्षणमे पंक्ति-पंक्ति बहुत-किछु तद्रूपे लेखनीक माध्यममे पुनः अवतरित भेल! पाछाँ अनेक मेधावी श्रोतासँ, जनिक कंठमे पूर्वोक्त पद्यक पंक्ति सभ स्फुट रूपेँ खण्ड रूपेँ स्मृत छल, ज्ञात भेल जे वैह सभ पंक्ति अक्षर-अक्षर निर्गत अछि! कविक सारस्वत

सिद्धिक फल स्वरूप 'राधा-विरह' ओही रूपेँ आइ प्रस्तुत भय सकल अछि। कविहिक शब्दमे—

'सरसा सालङ्काराकृति सार्थक कवि कृति गुण गुंफित रूप।
पदन्यास-विन्यास प्रशंसित सद्वृत्तिक साक्षात् स्वरूप॥
सर्जन रत कवि-रचित सुवर्ण खचित आर्यादिक वन्दित नाम।
भावमयी ध्वनि मोहित सहृदय हृदया 'कवि' कविता अभिराम॥'

श्रावणी पूर्णिमा, १९६९ —श्री सुरेन्द्रझा 'सुमन'
दरभंगा

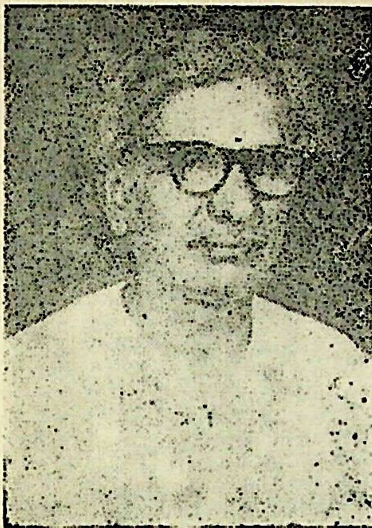


स्व० बाबू यदुनन्दन सिंहजी जनिका नाम पर यदुनन्दन सिंह
व्याख्यान माला आयोजित अछि जाहिमे स्व० डा०
अमरनाथ झा सदृश विद्वान सभक भाषण
भऽ चुकल अछि।



स्व० बाबू हरिनन्दन सिंहजी जनिकर स्मारक निधि द्वारा मैथिली साहित्यक अमूल्य ग्रन्थ सभक प्रकाशन होइत रहल अछि ओ मैथिलीक विद्वान लोकनिकेँ पुरस्कार देल जाइत रहलनि अछि।

कवि-परिचय



श्लेष, यमक एवं उत्प्रेक्षालंकारक विशेषाधिकारी, संस्कृतक विद्वान, मैथिलीक अनन्य सेवक, राष्ट्रभाषाक समर्थक, मिथिला विद्वत्परिषद द्वारा कवि चूड़ामणि उपाधिसँ सम्मानित, त्रिवेणी नामक कथाकाव्यक संकलन पर भारत सरकार द्वारा ५००), कोवर गीत पर स्व० मिथिलेश डा० कामेश्वर सिंह बहादुर द्वारा ५००), शतदल कविता संग्रह पर बाबू श्री कृष्णानन्दन सिंहजी द्वारा २००) पुन: एहि महाकाव्य पर ५००) टाकाक पुरस्कारसँ पुरस्कृत, विद्यापति पर समीक्षात्मक काव्य एव राधाविरह महाकाव्यक प्रणेता कविचूड़ामणि पण्डित श्रीकाशीकान्तमिश्र 'मधुप' वर्त्तमानमे करुण रसक प्रतिनिधि कवि मानल जाइत छथि। हिनक रचित शतशत गीत जनकण्ठसँ प्रति- ध्वनित होइत कुशेश्वर, बिदेश्वर, कपिलेश्वर आदि मेलाकेँ मुखरित कयने रहैत अछि।

पितृभूमि कोइलख, मातृभूमि ओ निवास कोर्थ, कर्मभूमि वहेड़ा। १९३९ ई० मे व्याकरण साहित्याचार्य परीक्षोत्तीर्ण भऽ सिमरा (मुजफ्फरपुर) संस्कृत विद्यालयमे अध्यापन करैत वेदान्तशास्त्री कयलनि। १९४० ई० सँ अद्यावधि वहेड़ाक जयानन्द उच्चांग्ल विद्यालयमे प्रधान पण्डितक पदपर प्रतिष्ठित भेल एहि संस्थाकेँ जीवनदान दैत वहेड़ाक परिसरक अणुअणुकेँ मणिपद्म बनवैत रहलाह अछि।

विनयी ओ उत्साही स्वभाव। परवर्त्ती साहित्यकारक प्रति निर्मल स्नेह रखनिहार जन्मजात कवि। गद्य लिखवाक अभ्यास हिनका लेखनीकेँ नहि, तेँ सत्रो छन्देमे लिखैत छथि।

—श्रीचन्द्रनाथमिश्र 'अमर'



रा

धा

धि

र

ह्न

सन्तत सन्तति-तति-सर्जन-हित
नगन रहैत मगन जे अम्ब,
पद पर पतित पतित धरि मुक्त
बनाय मुक्त तेँ कच अविलम्ब ।
सकुशल शिशु - संसार रहौ,
होइतैहँ सृष्ट, नहि जीव-कदम्ब
योगिनीक भोजन हो, तेँ
अम्भोजनयनि करुणा-घन लम्ब ॥
लऽ कऽ कर करवाल, काटि निज कण्ठ,
रुधिर सँ विपुल-नितम्ब
नीकेँ जकाँ योगिनीकेँ
बोधथि, से हो 'मधुप'क अवलम्ब ॥

[२]

गतिजितनाग भयङ्करनाग—
निबद्धमूर्धमणि त्रिभुवनसार—
रूपवती भगवती हाथ मे
काटल माथ खड्ग शित-धार।
रति-विपरीत-निरत-मन्मथ-रति—
पीठक ऊपर प्रत्यालीढ़—
चरण राखि जन-शरण,
डोलावथि जे अखण्ड ब्रह्माण्डक रीढ़॥
पिबइत रक्त कवन्धक,
विधि हरि हरहुक बन्धक हेतु महान।
से 'मधुप'क मन बन्धक राखथु,
जकर प्रबन्धक गति नहि आन॥

[३]

विजयि - विधुन्तुदवर्गहुँ सँ
बाभ्रल-वन्दित-विधु बनल सहास,
चिर थिर चारु-चमक सँ चपला
चमकि जाहिमे करय विलास।
नभ सँ नमरल नखतनाथ
करइछ नीलम-नीरज-रस पान,
ललित-लता-लम्बित युग सोनक
नग नतमुख नचइत हो भान॥
वन्दनीय शम्पा-घन-सम्पादित—
अद्भुत से रति विपरीत।
राधा हरिक भक्ति सँ रति—
विपरीत हमर हरि हो सुप्रीत॥

[४]

जाहि वियोग-व्यथांक कथा-निधि—
सन्निधि उद्धव गत-निधि भेल
सानुराग गोपी-पद – पद्म—
पराग भाग बुझि शिर धऽ लेल।
आन उपाय न मानि, जकर—
पीयूष कैल द्वैपायन पान,
'आ' कवि-कोकिल-कण्ठ-काकली—
कली जाहि सँ फुट अम्लान॥
ताही निधिक रत्न सँ लोलुप—
'मधुप' भक्ति श्रद्धा-नत-माथ।
राधा-विरह लिखै, हरि—
आधा तनु बाधा हरि करथु सनाथ॥

[५]

सपन-छनहुँमे अपन-रचित-पद—
गत-त्रुटि चित मे हो नहि भान,
देखि नैज आकृति निज कृतिं मे
प्रतिविम्बित बुध मुदित महान।
जहिना दर्शक-नयन देखै भऽ—
मस्त समस्तधरित्रिक रूप,
किन्तु देखि नहि पावय 'या' वय
विनु आदर्शक अपन सरूप॥
रहितहुँ दोष, दोष हमरा नहि—
दऽ सकता सज्जन ई मानि।
दोषाकर बुझितहुँ दोषाकर—
केँ चढ़ौल शङ्कर चट चानि॥

[६]

तुच्छ पक्ष-रहितहुँ उड़इत—
इत उत भन भन टा सतत करैत,
गुणगण देखि गुम्हरि गुम,
दोषक कण लखि रसना लपलपवैत।
भिन्न भेल कें छिन्नभिन्न कऽ
शोषक बनि करइछ जे घात,
घावमात्र बढ़बक प्रभाव—
वाला स्वभाव हो जकर न कात॥
बिश्रनि डोलबितहुँ नहुँ नहुँ घुरि फिरि
आबि विकृत मन जे कऽ दैछ।
तै खल माछी केर उपद्रव—
सँ के मानव बाँचि सकैछ॥

[७]

सुर-समुदाय-सुसेवित सृष्टिक—
सुधासार सौन्दर्य - शरीर,
शान्ति-सदन श्रुति-सम्मानित,
सारस्वत-पद-शृङ्गारक हीर।
सदृश समुज्ज्वल सुमन सुमन सँ
कऽ सौरभित सुखद-रस पान,
सरस - सुमन - सौजन्य - सुहृद—
श्री 'मधुप' करै स्वान्तः सुख गान॥
गुन गुन करइत जकर गूनि गुन
भावुक - मण्डल भाव - विभोर
अर्थ न बूझि अनर्थक प्रतिमा—
खल खलखल हँसि देत अथोड़॥

[८]

राघोपुर पुबारि-ड्यौढ़ी स्थित—
वारिज - पात - गात साक्षात,
सत्साहित्य-सुधा-रुचि शुचि-रुचि—
रुचिर-सुधाकर-यश - अवदात—।
खण्डवलाकुल-कञ्ज-मुकुल - कुल—
रवि मैथिलीक प्राणाधार,
श्रील कृष्ण नन्दन जी सिंहक
पवइत अवलम्बन सत्कार॥
सेबि बहेड़ा ब्रह्मस्थानक
हरित पीपरक छाहरि शान्त।
लीखल जयानन्द उच्चाङ्गल—
विद्यालय मे रहि एकान्त॥

[९]

तेजि तमक बनिआनि प्रकृति—
मोदिआनि नखत-रसगुल्ला आब,
डण्डी-युक्त तराजू लऽ नभ—
पगडण्डी पर कऽ किछु भाव।
छवि देखाय रवि सन क्रेता सँ
दाम गछा कऽ भावि प्रकाश,
बेचि लेल, दूर्वादल-दोना-
मे अलेल होइछ जे भास॥
भुरुकबाक होइतहिँ समुदय,
जहिँ तहिँ उडुकुलक क्रमहिँ अवसान।
पूत कपूतक जन्महिँ रहय न
पूत-वंशहुँक थान बिथान॥

[१०]

ऊषा मगन गगन-तरुवर सँ
तोड़ि तरेगन चानक फूल,
वर-अम्बर सँ झाँपि अरुण—
वर-दत्त ओढ़ि पुनि अरुण-दुकूल।
विसरि विरह प्राचीन पतिक,
प्राची-नग-भाल उपर कऽ ठोप,
लाल-विशाल-सिनूरक सुन्दर,
तम-तस्करकेँ मारि सकोप॥
जगमग करइत जग-मगमे
अछि छीटि रहल कुङ्कुम कमनीय।
देखि मुदित चर अचर निसर्गक
नूतन तन सुषमा रमणीय॥

[११]

नीक-परिस्थिति कमलिनीक लखि,
कुमुदिनीक मनमे भेल डाह,
प्रमदोचित चित उदासीन कऽ
अनुचित उचित विचारि न आह!
मुख-मुद्रा मम आन न देखौ,
आनन अपन झाँपि तेँ लेल,
पद्मावली हँसैछ सपद्मा,
बली-नियति-कृत गुनि कऽ खेल॥
मलयाचलसँ आबि परसि—
अञ्चल बुझबै कत धीर-समीर।
शान्ति कहाँ तकरा, जकरा—
हियमे ईर्ष्याक प्रबल हो पीर॥

[१२]

सुरभि-सिन्धु-अवगाहक रतिगुन—
गाहक गुनगुन गाबि मिलिन्द,
नीरज-नयन-कोशमे काजर—
काज रहौ नहि तेँ सानन्द।
सेबल कञ्ज-कपोल, पीबि—
रसना सँ रस नामी साक्षात्,
जार तदपि गुञ्जार करै पुनि,
से बुझि कम्पित पादप-पात॥
क्रमहिँ करथि कर्कश कर दिनकर,
कनिञो ई कनिञो नहि ध्यान—
देथि, थीक पङ्कज तँ पङ्कज,
तेजि कोना सकते खनदान॥

[१३]

सञ्च मञ्च वक-मण्डल शावक—
सहित ककरदनि करइछ ध्यान,
अधिक भक्ति आसक्ति थीक,
चोरक लक्षण, कहइछ सज्ञान।
राति-अरातिक दुख पर्वत जे
चक्रवाक घुमि विरहक चाक,
प्रिया सङ्ग रहितहुँ निःसङ्ग—
समान कनै' छल बना अवाक॥
बीकल से चकबीक लगहिँ बिनु—
दाम पाबि उद्दाम-सिनेह।
के प्रकृतिक आकृतिक भेद—
बुझि सकत, वेद धरि मूक सदेह॥

[१४]

रविक रश्मि पड़ला सँ विद्रुम—
वर्ण भेल द्रुम-दल केर गात,
नव पुरान पल्लवमे लव भरि
भेद भाव धरि हो नहि ज्ञात।
फुदुकि फुदुकि खग खगल सदृश चल,
चलल ऊड़िकऽ तेजि कुलाय,
शिशु अकुलाय, तकर चिन्ता नहि,
बोधै जकरा पवन झुलाय॥
दूविक अविकल बिकल सकल—
मोती अमूल्य विनु मूल्य तुरन्त।
दाम छदाम न पौल, एहिना—
मतिहीनक सम्पति हो अन्त॥

[१५]

विकसित-सित-सुम सँ सहास—
जै रजनी भरि रजनीगन्धाक—
मुख, सौरभ सँ ककरो सम्मुख,
दरश देल नहि दुख-धन्धाक।
से कोँढ़िआइलि कोन रोग सँ
कोँढ़िआइलि सन बनलि हताश,
हीना नाम धराय, विकास—
विहीना सृष्टिक ई उपहास॥
बोध करावै जनु अबोध—
जगतीकेँ कऽ परिवर्तित रूप,
मानव तदपि कहै नहि मानव
मान-वशंवद अन्धसरूप॥

[१६]

जाहि घूक सँ भीत मूक—
बनि कऽ फराक छल काक वराक,
तै उलूक केँ बना उपद्रुत—
द्रुत वायस-दल दै' अछि हाक।
सबल बनै जन अथवा निर्बल,
अपन ताहि पर नहि अधिकार,
सुख किंवा दुख देवक सब्रटा
छैक समय देवक शिर भार॥
सैह बूझि बनि आन्हर कौशिक
नुकयबाक कऽ रहल प्रबन्ध।
शत्रुताक नहि अन्त शत्रुता—
सँ न विचारै जगती अन्ध॥

[१७]

वृत्तक हरिअर हरिअर दल सँ
मिलल दलक दल हरिअर आबि,
बूझि पत्र जकरा पतत्र केँ
वैसय चाह आन खग दाबि।
सगबगवैत पाँखि ओ ओकरा
ज्ञान कराकऽ अछि भगबैत,
एहन अन्ध केँ कुहु कुहु कहि—
कुहुकै पिक पञ्चम मध्य गवैत॥
उड़ि उड़ि भ्रमन करैत भ्रम न बुझि
तैयो सैह विहग बकलेल।
सक भरि बैसक करै यत्न तेँ—
कोकिल-नयन रक्त जनु भेल॥

[१८]

पिबि भरि राति छाक भरि मृदु मधु
 जाहि कुमुदिनिक मत्त-मिलिन्द,
जकरे पीबि पराग, राग—
 पिङ्गलशरीर अछि बनल अमन्द।
देखि दुखक छन तकर;
 राग गबइत सरोज लग मे मरड़ाय,
ओ जनु प्रात-वात सँ कम्पित—
 गात कात जों कहु खिसिआय॥
स्वारथ-रथ पर चढ़ल तदपि अलि
 चाटुकारिता बोल सुनाय।
मन्द मन्द मकरन्द पान कऽ
 मान मानिनिक देल सठाय॥

[१९]

संख्यातीत - विमल - कुड्मल—
 कलसी सौरभ-जलसँ कऽ पूर्ण,
वृन्त-माथ पर लऽ सनाथ
 वेली अलवेली सस्मित तूर्ण।
षट्पद नव षट्पद पल्लव दऽ
 गाबि रहलि अछि नगहर-गीत,
विधि-विधिकरी सविधि प्राची-पट—
 रङ्गल, वधू वसुधा सुप्रीत॥
देखि देखि विख्यात सूर्य—
 विख्या तत्त्वण तृण-पुलकित अङ्ग।
पाणिगृहीता भेली रविक,
 जे निशि भरि कैलनि शशि सँ सङ्ग॥

[२०]

भावि पुनः परिणय विचारि,
अविचारि-लोक मे रहक न थीक,
तेँ सातो ऋषि तकर बसातो
लागब सँ पहिनहिँ बुझि ठीक।
हित बान्धवक सहित अन्तर्हित,
वृद्ध-गगन कानल भरि पोष,
धीर कीर पिजरा मे कहि कहि
राम राम करइछ सन्तोष॥
गुरुक छीनि तारा तारापति
कैल पूर्व जे अत्याचार।
पौल तकर फल, जेहने करनी,
तेहने फल पबइछ संसार॥

[२१]

आधे पहर राति सँ प्राती,
गावि छलाह पहर जे दैत,
निन्दक भेने कमी, ताहि—
निन्दक-युव-जन केर व्यङ्ग सुनैत।
बाल-कुरङ्गी — नयनि जकर
भुज-जाल छोड़ा भागलि बुझि भोर,
चौंकि चिहुँकि ग्रीवा मे—
साटीफिकेट दैत कब्नाक नछोड़॥
सेहो वूढ़ वुढ़ानुस मानुस
दुखक पात्र जलपात्रक हाथ।
धनुषीगात्र अपात्र-जरा सँ
चलला बान्हि मुरेठा माथ॥

[२२]

झाफी पर झाफी करैत आ'
छन छन दैत अङ्कैठीमोड़,
अञ्चल सँ नखछत झँपैत,
ओ घोघट-पट सँ विक्षत-ठोर।
एना देखि क्यो बूझि जैत,
तेँ ऐना विनु चूरू भरि वारि,
धार झुका शृङ्गार ठोक—
क्यो करइछ निज प्रतिविम्ब निहारि॥
रति-मर्दित-आङ न थिर तैयो
आङन घर क्यो रहलि बहारि।
ननदिक दिक करवा सँ पहिनहिँ
वसन विभूषण सकल सम्हारि॥

[२३]

आनि कुञ्ज सँ नूपुर ककरो
दूती शीघ्र पुरस्कृत भेलि,
क्यो कहि रहलि सखी सँ घुलि मिलि
रातुक सबटा बीतल खेलि।
हम नहि जानी केहेन प्रेमपथ,
खाय शपथ क्यो कह परतारि,
उत्तर मे सदर्प दर्पण क्यो
दऽ कहैछ 'ले अधर निहारि'॥
कोनो अभागलि भरि रातुक—
जागलि, न जकर पहु आयल पास।
नयनक नीरद सँ झहरावै
नीर दबौने सब उल्लास॥

[२४]

क्यो कोरक सन कोमल कोरक
कनइत शिशुक ठोर चट चूमि,
झारि उझारि दुलारि मारि
चुचकारि दूध पिअबै अछि भूमि।
नेनु मथै . क्यो लऽ कऽ मथनी
गवइत रङ्ग विरङ्गक गीत,
क्यो कऽ स्नान ध्यान करइत अछि,
क्यो देव-स्तुति पढ़ै पुनीत ॥
यमुना-तट जाइछ कतेक—
रमणी घट कटि 'आ' माथ चढ़ाय।
सङ्गिनीक गप-धारा मे भसि
रभसि प्रेम सँ पैर बढ़ाय ॥

[२५]

क्यो बहार कऽ माल जाल कें
घास पात अछि रहल ओगारि,
घंटी जकर टनाटन बाजै,
क्यो सानी बनबैछ गोआरि।
गाय दुहै गोपाल कतेको,
जकर गर्र गोँ ध्वनि अभिराम,
चमकि चमकि मकि रहल कतेको
नेरु दृश्य देखबैत ललाम ॥
छमकि छमकि नेना सब—
जकरा लग 'जा' कऽ पुनि जाय पड़ाय
गमकि गमकि कऽ शैशव-सौरभ—
जकर, सभक हिअ दैछ जुड़ाय ॥

[२६]

धन-जन-रक्षा-हेतु पुरोहित
घर-घर कर पूजन उपचार,
होमक अग्निक शिखा सिखाबै
संस्कृति धर्म कर्म सञ्चार।
दग्ध हव्य सँ हिलि मिलि पावन-
पवन सुगन्धि रहल अछि बाँटि,
धूम केतु सन खल कें जकरे
धूम-केतु रहले जनु डाँटि॥
पथ-पथ पर भऽ रहल दृश्य-
उमड़ल दधि मटुकी उदधि अनन्त।
भरि घृत माट, पयोघट लऽ कऽ
माटो माट गोप श्रीमन्त॥

[२७]

पीताम्बर परिधान पहिरि-
गोपी-जन माखन लऽ कऽ ठाढ़ि,
ले नवनीत पुनीत बाजि कहुँ,
जकर प्रेम हेमक अति बाढ़ि।
सब कें गौर-वरण सँ गौरव,
क्यो नहि पातरि छीतरि नारि,
छी तरि चढ़ि कऽ पार उतरि-,
यमुना, जैबा लै हम सुकुमारि॥
कहइत कृष्णे कर्णधार लै
क्यो कातरि कृष्णे केर कात।
कान अकानै जकर मुरलि धुनि
ताकै नयन नील-जलजात॥

[२८]

छन भरि हरि नहि देखि-
निरवलम्बा क्यो विपुल नितम्बा दार,
तजि घर आङन अम्बादिक-
जगदम्बा कें मनबैत उदार।
वन वन ढूँढै धन वनमाली
जीवन-उपवन-माली श्याम,
क्यो कदम्ब अवलम्ब हुनक बुझि
थाकि थाकि बैसल तै ठाम॥
खोज करै अम्भोज-नयनि पुनि
सेवा कुञ्ज पुञ्ज मे जाय।
गाय गाय लग बाप माय लग,
कतउ न पाबि हाय! अकुलाय॥

[२९]

यदुपति नन्दन एहेन भोर मे
देखि अपन नन्दन सुखसार,
विह्वलता सँ अबल पुछथि-
बल कें, कहु कत मम प्राणाधार।
आधे पहर राति सँ पाबी
कहुँ न पूतनारातिक भाँज,
चेतन होइतहुँ छनि किछु चेत न,
कोना सदच्छन रखबनि पाँज॥
से सुनितेहँ कहल धर दऽ
हलधर दऽ पट्टी बात बनाय,
कुन्द-कुञ्ज मे छथि मुकुन्द,
हम माखन रोटी एलहुँ खुआय॥

[३०]

नन्द यशोमति भेल थीर मति,
बलरामक बुझले सब हाल,
की की करथि कन्हाइ कखन,
'आ' कोन काज लै रहथि वेहाल।
सुर मुनियों नहि ऐ महिमान्यक
बूझि सकथि किछु महिमा लेश,
योगी बनल वियोगी हिनके-
कारण धरथि उदासी वेष॥
से गोपिक आँखिक पुतली केर
कठपुतली बनि काँटे काँट।
घूमि रहल छथि झूमि झूमि नित
वृन्दावन मे होइतहुँ आँट॥

[३१]

तही प्रभातक सरस प्रभा मे,
जनिक प्रभावक लहि किछु अंश-
चान प्रभाकर नभ मचान पर
होथि उदित जगती अवतंस'।
प्रेम-कलह वश एक दिवस से
हरि वियोग राधाकेर पाबि,
करथि प्रलाप विलाप खनहिँ,
हँसि देथि खनहि नाचथि सोल्लास॥
आह! बताह जकाँ खसि खसि पुनि
उठथि होश कऽ हवोढकार-
कानथि, तृण डोलितौहँ अकानथि,
निर्विकार रहितहुँ सविकार॥

[३२]

पुष्पित पुञ्जक पुञ्ज कुसुम सँ
मण्डित निभृत निकुञ्जक माझ,
गुञ्जित-मधुकर-निकर बनौने-
छल जै ठाँ दिन रहितहुँ साँझ।
नयनक आधाहुक आधा सँ
राधा! बाधा देखह आबि,
तै निकेत सँ वंशी सँ
संकेत करथि मोहन खन गाबि॥
सूझि कतउ सँ से ललिताऽऽकृति
ललिता आबि ततै सञ्जानि।
दशा देखि धैरज दऽ कर धऽ,
विरज बनाय कहल सन्मानि॥

[३३]

अहाँ अही एकान्त कुञ्ज मे
कान्त! शान्त भऽ रहु किछु काल,
आनि दैत छी आनि-भरलि-
प्रिय-सखि केँ सारङ्ग पाणि रसाल!
देखब पुनि कहियो किछु कहियो-
खिसिआयब नहि, ओ छिड़िआहि,
ई कहि ललिता वृषभानुक ललि-
निकट गेली, पुनि हरि कहि आहि!
लैत उष्ण निश्वास कैल पन
अपन मनहिं मन फेर न आब।
झगड़ि एना गड़ि वेदन-पङ्क मे
सहब विरह केर दारुण दाव॥

[३४]

अही रूपैं राधा-विरह-कृत आधा तनु लेने,
करै देवाधीशो जनिक पदसेवा शुचिमने।
कन्हैआ से देखै श्लथ पथ एती आब ललिता,
प्रिया सङ्गे कैने मम दुख भगौने गुणवृता॥

[३५]

पलक लक लगौने जानि ने कोन बातें,
युगकमलक रत्ता तेजि सुस्थीर गातें।
तन-पतन दशा सँ मुक्त मुक्तात्मकामो,
हठ धय हठयोगी मे भेले अग्रगामी॥

[३६]

सजग जगत सौंसे छोड़ि राधाक ध्यानी,
हरि हरितमना भऽ गेल गीताक ज्ञानी।
प्रकृति-कृति-उपेक्षा के कृती कऽ सकैऐ,
जकर कर-इसारा सँ विराटो नचैए॥

[३७]

सुधि बुधि बुधिआरी कें पिआरी वियोगें,
बिसरि सुरसरिद्भूपादपद्मो कुयोगें।
सुनि सुनि सम दूनू आँखि 'आ' राधिके हे,
जपय पय बहा कऽ देवि प्राणाधिके हे॥

[३८]

ई जपइत तन्मयतें अजय चिदात्मा तनिक ललाम,
आकर्षित कऽ मिला अपन आत्मा सँ यद्यपि श्याम।
समाधिस्थ छथि, तैयो विषमाऽधिस्थ जकाँ हो भान,
प्रबल आदिशक्तिक माया सँ, नोरक विन्दु प्रमाण॥



दो
स
र
स
र्ग

भेलि हतप्रत्याश अनवरत–
जोर जोर सँ लैत निसास,
श्रान्ति – स्वेद – जल–भीजल–देह,
सदेह कनक–लतिका जनु भास।
कृत–कवरी–श्रृङ्गार–कुसुम झरि
झरी जकर पथ मे लगबैछ,
पुष्पित – जङ्गम – लता – गमन,
गमकहिं बुझि अलि उड़ि सङ्ग लगैछ ॥
उधिअबैत आँचरक छोर–
काँटक नछोड़ कें नहि लगबैत।
दौड़लि पहुँचलि से चञ्चलि–
ललिता हरि–उत्सुकता जगबैत।

[२]

किन्तु सहस - सहचरी - सेव्य
राधाक वेदना ओम्हर विलोकि,
एम्हर वैद — सङ्गीत — हरिक
निर्वेद - नदी - लहरी अवलोकि।
अश्रु - पूर्ण - लोचन - तरङ्गिणी,
बनि गेलीह तत्ते कनलीह,
फुट वाणी न तदपि, गङ्गा-
यमुनाक मध्य वाणी बनलीह॥
अपनाकें सम्हारि कहुना ओ-
पुनि मति पुनमति कऽ सुस्थीर!
परसि रसिकतम पहु-तनु सौंसे
तनुक-पाणि सँ बनलि अधीर॥

[३]

देखल खल - मन्मथ सँ मन्मथ
भऽ समाधिगत छथि गोविन्द,
दृढ़-पद्मासन पद्मा सन प्रिय-
सखी ध्यान मे युग-अरविन्द।
नयन मूनि, मधु झहरि जकर
सिंचि रहले मधुसूदनक कपोल,
किंवा बिनु जल जलज देखि
उपचार करै अछि प्रकृति अमोल॥
वा अपने जातिक अम्बुज ई
बिना अम्बु जरि जायत आह!
नीरद बनि बहबैछ नेत्र - नीरज तें
करुणा - नीर - प्रवाह॥

[४]

'आ' द्रुतगति सँ उधकि रहल छनि-
छाती, धधकि रहल छनि अङ्ग,
लुबुधि रहल छनि वनमाला पर
अलि, तकरो सुधि बुधि भेल भङ्ग,
काम-चमूक विवश भऽ रहितहुँ
मूक जोर सँ लैत निसास,
पाठ करथि जनु राधा राधा
आराधक सम जगन्निवास ॥
जाही श्वास-समीरक ज्वालेँ
कुञ्जक जूही जाही फूल ।
झुलसि झुलसि कऽ झोल जकाँ
झरि रहल धरा पर भऽ निर्मूल ॥

[५]

जनिक मारकत-गात, जाहि सँ
विजित मार, कत पुनि उपमान,
स्वेदक उदक-विन्दु तैं ऊपर-
झलकै, जे लखि हो अनुमान-
कृष्णचन्द्र-मुख चन्द्र मानि
अनुमानि गगन नीलम सन देह,
जगतारक शरीर मे तारक-
मण्डल उदित भेल सस्नेह ॥
मिलित-तमालक पात-माल पर
की चानन घसि क्यो छिटि देल ।
सकल कलस रोमक किंवा हरि,
प्रिया-स्वागतक हित भरि लेल ॥

[६]

किंवा पहुक अतल-हीतल-
निधि मे ऊठल जैं विरह-जुआरि,
मोतिक कन तैं भासय, जे
अवभासय घाम-विन्दु अनुसारि।
वा त्रिभुवन - मानल - प्रभुत्व
कामानल-ज्वाला मे पकलाह,
तैं अनन्त व्रण प्रकटित भेल
अनन्तक कोमल-वपु मे आह॥
किंवा कृष्ण निकष पर कसइछ
प्रेम-हेम अप्रकट स्वरूप।
शुचि शुचि जकरे सरस-ज्योतिकन
कनकहुँ सौं बढ़ि व्यक्त अनूप॥

[७]

किंवा हेरा सिनेह-सोन-
श्रीपति पतिआ करवाक निमित्त,
अगणित सजल-रोमहर्षक कुश
सजलनि निभृत कुञ्ज मे मित्त॥
रहौ किच्छु तै जलधारा सौं
हाय! नहाय रहल छथि श्याम,
पोरी छिटकल देह देखि हम
विकल वाम, की करु विधि वाम॥
किछु छन पूर्ण अपूर्ण ठोर जे
छल पाकल-तिलकोर समान।
सम्प्रति मनोव्यथा प्रतिघातैं
नहि सुख लहि से सुखल मलान॥

[८]

उन्मद - मदनक मोहन - मन्त्र
जपैत जकाँ करइत गुञ्जार-
मधु-मातल - मधुकर - मण्डल-
सेवित - वनमाल - कण्ठ सुकुमार।
विमल - मलय - पवनेँ मृदु मर्दित-
वनक पुष्प - रज - पूजित देह,
प्रतिभासित हो प्रकृति समर्पित -
कैने हो जनु सत्य - सिनेह॥
मुष्टिकरिपुक बद्ध - मुष्टिक गत -
मुरलिक अग्रभाग सँ स्वेद -
छलेँ चूबि जनु मूक राग
भऽ सानुराग कहइछ निर्वेद॥

[९]

की करु! अकरुण दैव कैल की,
बुझय न परस परसमनि मोर,
सुनय न पङ्कज नयन जोर सँ -
कतबो कानि करी हम सोर।
थकलहुँ कऽ वन्दना, बन्द -
नाथक सकलहुँ नहि लोचन खोलि,
थावर राधावर बनलै रे,
डोलबितौहुँ रहले नहि डोलि॥
हन्त! अनारी नारी हम,
नाड़ी देखितौहुँ न हो किछु ज्ञान।
कोन करब उपचार! विचारक
एहि ठाम दोसर नहि आन॥

[१०]

हाय ! सहायक क्यो नहि,-
उखड़ल मजरल फड़ल रसाल विशाल,
उजड़ल भवन यशोमति नन्दक,
कुम्हलायल आनन्दक भाल।
भेलि गाय असहाय,-
गेल गायन-सुख, गोपिक फूटल भाल-
व्रज - माधुरी - शकट केर धूरी-
टूटल, टूअर गोपक बाल ॥
राधिकाक शृङ्गार उपर -
सहसा पड़ि गेल ज्वलित अङ्गार ।
मुरली मुररिपु विनु अनाथ,
हा नाथ ! भेल सवटा सुख छार ॥

[११]

के खन माखन छीनि झपटि
पुनि पटिआओत कहि मधुमय बोल,
ककर तान. सन्तान सुनत -
गोकुलक मुग्ध भऽ सतत अमोल।
टूटि रहल हलधरक बाँहि,
वृन्दावन बनत आब समसान,
छीनि रहल दुर्दैव चकोरक -
कोरक दऽ पुनि पुनिमक चान ॥
रहब पिया बिनु सबहिं पियासलि
स्वाती जल विनु चकबिक रूप ।
रूपक रूपक व्यर्थ नारि केँ,
जौं न नयन लग पतिक सरूप ॥

[१२]

व्रत कऽ देह बना व्रतती सम
विषम नियम पालल जै' हेतु,
तोड़ल सब सम्बन्ध बन्ध,
मोड़ल कुल-मर्यादा-शुचि-केतु।
छोड़ल छोर प्रतिष्ठा - वसनक,
ओड़ल प्रतिपल तन मन प्राण,
गोड़ल गोर शरीर, गोड़ -
लगितहिँ मठ मे सुर केँ अम्लान॥
फोड़ल सामाजिक - बन्धन-घट,
बोरल निधि गुरुजन - उपदेश।
कोड़ल मनु-पद्धति-लतिका - जड़ि,
जोड़ल केवल नेह विशेष।

[१३]

छनिक सखीक वियोग-योग -
होइतहिं तनिकर की भऽ गेल हाल,
की खल-विधि लीखल सब -
ब्रज वनिताक एक कलमहिं सँ भाल।
कूकि कूकि के पिक समान -
गोपिक मन सदिखन हरि हरि लेत,
हमरा लोकनि सिखी तँ -
नाचि शिखीक सदृश के शिक्षा देत॥
ककर सूनि वंशी - ध्वनि, नीपक
काज छोड़ि, नीपक लग जैब।
दितहिं ककर मटकी, मटकी -
कऽ माथ सबहिं घर सँ बहरैब।

[१४]

के खेवा लेबाक छलैं-
करतैक ग्रीव सँ हार बहार,
परसि सठाय मान सञ्चित,
रोमाञ्चित कऽ तनु चित अविकार।
नीक अहींक नयन-
हरिनीक नयन सँ कहि के हरिनिक सङ्ग,
करत मिलान अलान दैत -
मम लोचन सँ रचइत भ्रूभङ्ग ॥
कान अकानत ककर पदध्वनि
वन मे विचलित होइतहिं पात।
सम्मुख देखि ककर मुख-
मुखरित हैत हृदय वीणा साक्षात ॥

[१५]

निभृत कुञ्ज सँ कूकि उठत के
परभृत जकाँ नुकायल काय,
पैर मारि के आबि गमारि -
कुमारि सभक मूनत दृग हाय !
मचकिक उपर मचकि ककरा -
सङ्गेँ हम बैसि लगायब आश,
कन्या वर कोबर-सुख करइछ
सभक कोना पूरत से आश ॥
वन-माला सँ लोढ़ि फूल -
वनमाला ककरा हेतु वनैब।
मान गुमान छजत ककरा पर,
भाव भङ्गिमा कतऽ जनैब ॥

[१६]

रे कन्दर्प ! दर्प सब तोहर
हर -- कोपानल मे भेल छार,
तदपि कमल सन कोमल पहु कें
छीनि रहल छें बनि दुर्वार।
पतिक प्राण - सम्पतिक विना
रमणीक केहेन उत्कण्ठित प्राण,
होइछ, लैह पुछि रति सँ तुअ विनु
कोना तुअल सुम सम म्रियमाण॥
वाल वृद्ध पर अस्त्र धरी नहि
बुझितहुँ वालकृष्ण कें नीच।
एहेन बनौलह, गोपि जनक -
लहठी छीनक हित गोकुल बीच॥

[१७]

मनोहारि हिनकर निहारि
को रूप, हारि कैलें तों डाह,
तें बनि काल अकालहिं हरि -
रहलें अछि हरि कें निर्मम ! आह !
रे ! हमसब सोड़ह हजार -
सुन्दरी चिताक दरी मे पैसि,
हिनके सङ्ग स्वर्ग--सङ्गति-सुख
करब कल्प तरु छाहरि बैसि॥
नाक वासि - देवाङ्गनाक
कामना काम पूरै नहि देब।
जतै नन्दनन्दन, हम गोपी
वृन्दाबन तकरे कऽ लेब॥

[१८]

सुनितहिँ मोहन-मुरली-सुर-धुनि
सुरधुनि झट यमुना बनतीह,
गोपक सङ्गेँ सुरगण गोप—
बुझैत अप्सराजन कनतीह।
पहु लै वृन्दा बनि हमहूँ सब
वृन्दावन केर दृश्य देखैब,
भगवानक वत्सलता सँ
देवहुँ केँ वत्स-लता बुझि पैब॥
हिनक कने भ्रूभङ्ग होइत
सुर-भी बढ़ि सुरभी हैत अनेक।
पद पद पर आनन्द ग्राम मे
देखब नन्द ग्राम छवि एक॥

[१९]

किन्तु श्रवण-गत होइत श्रवण सम
जाय रहल अछि तजि ई लोक,
छीनय दुर्नय-दैव बुढ़ारिक
दण्ड जकर आ' नयनालोक।
ताही नन्दबबाक अवाक—
मुखाकृति देखि सकत के हाय !
मनि-विहीन मनिआर साप सम
माथ पटकते जखन लोटाय॥
तीर्थ वर्थ वुलि कबुलि कते
सुर केँ जे पाओल ई सन्तान।
एक मात्र इन्दीवर गात्र
सुपात्र विनिन्दित कोकिलतान

[२०]

जनिकर आशाकली - निकर
प्रस्फुट विनु भेनहिँ तूवय आज,
जीवन-रजनिक चान जनिक
दुर्भाग्य-राहु-मुख मध्य विराज।
जाहि अहीरक हीरक लुटि—
रहले अछि नियति-नटी दऽ डाक,
तोड़ि रहल कटि-सकटि जकर
जन्मान्तर-कृत्य-अशुभ परिपाक ॥
कहाँ हमर घनश्याम, तकर—
पुछितैहँ सभक लोचन घनश्याम
वनि व्रज-अवनि असौंत-
मूसलाधार वृष्टि करितैहँ तमाम ॥

[२१]

कुञ्चित-चितमोहक कच-अञ्चित
ककर कपोल-युगल केँ चूमि
यशुमति नन्दसहित आनन्दक
सुधा पीबि उठती नित झूमि।
खोआ माखन रोटी तोँ—
खो आबि कने ककरा कहतीह,
दौड़लि लथ पथ, पथ मे दऽ दऽ
शपथ बौँसि ककरा अनतीह ॥
हाय ! दुहाय बकेन गाय
ककरा जगाय नित होइतहिँ भोर।
दूधक पान करौती चढि—
वात्सल्य-सौध-सोपान विभोर ॥

[२२]

ककर मचलि चलितैहँ छोड़ि—
भोजन, परतारि महरि बुधिआरि
सुगना मेना और गना सब
खोआ देतो चुचकारि दुलारि।
के गोधूली – वेला खन
गो–धूली सँ धूसर सब अङ्ग,
यशोदाक मातृत्व - यशो—
दामिनि थिर चमकाओत सोमङ्ग॥
अनको कानब सूनि कृष्णहिक
जानि, अकानब हा! सठि जैत।
गोपाल न यदि गोपालन—
सेवा सँ हुनि श्रद्धा उठि जैत॥

[२३]

बालघातिनी पूतनाक के
पूत–नाक मे दितै निवास,
कालिय-विष-युत कालिन्दी—
उद्धारक के करितै विसबास।
के गोकुला - पुरन्दर - इच्छुक—
पुरन्दरक हरितै अभिमान,
के दावानल सँ दावा कऽ
करितै ग्वालबाल कें त्राण॥
नग्नस्नान प्रथाक कथाक—
करैत एहि व्रज सँ के लोप।
करुण लोक सँ लोकल नन्दहुँ—
कें के आनि दितै कऽ कोप॥

[२४]

शैशव समयहिँ मे सब महिमा
जनिक सैह बचकानी श्याम,
सम्प्रति जाय रहल अछि हलधर—
बन्धु सिनेह सठा अभिराम।
अप्रिय ई गप प्रियक कोना हम
कहवै ककरा दीना नारि,
गोपीनाथ विना सव गोपी
हैत हन्त! मीना विनु वारि॥
वज्रहृदय दय देल अदय विधि,
आबहुँ जे नहि होय विदीर्ण।
शेष विशेष रहल की देखक,
आब आयु एतवैक अजीर्ण॥

[२५]

जनिक छनिक विरहहिँ निःप्राणा—
सदृश सखी राधा सुकुमारि,
तनिक हाल सुनितहिँ मरि जैती
कुमरि हमर वृषभानु दुलारि।
रे मम निर्मम प्राण! छोड़ तोँ,
कहियो छौ निश्चय जैबाक,
एहि दरद-रद सँ न कटा, मरि
प्रिय अछैत अछि गति पैबाक॥
ई कहि कहि कार्तस्वरवर्णा
आर्तस्वरवर्णा वनि वाम।
दारुण-दुख सँ भेलि विवर्णा
खसली मुरुछि लैत हरिनाम॥

[२६]

मूर्च्छापन्न विपन्न दशा किछु—
छन उपकारे कैल हुनीक,
सब किछु बिसरलि पड़लि छली
भूलुण्ठित मस्तकमणि रमणीक
तावत नन्दनच्युत ओ—
कल्पलतावत् मुरुझलि निश्छलिवाम,
ककरो छिरकल जलक लवहिँ—
संज्ञा पबैत कहि कहि घनश्याम ॥
खोलि नयन देखल तँ सम्मुख
सस्मितमुख क्यो तेजक पुञ्ज ।
गुणगण हरिक गबैत ज्योति सँ
जगमगबैत सकल वन कुञ्ज ॥

[२७]

मुनि-जन-गौरव दीप्त अनल सन
गौरवरण सुवरण-द्युति-भाल,
कृष्णाजिन आवरण मात्र, जनु
कृष्णा मिलित गङ्गजलजाल ।
संयत सौम्य केसरिआ वर्णक
जटायुक्त प्रतिकृति अज टाक,
वीणा पाणि राखि कऽ स्पर्धा
करइत वीणापाणि छटाक ॥
सकल-तीर्थ-मण्डलक वारि सँ
भरल कमण्डल-मण्डित हाथ ।
आ' अनामिका हरित गजाङ्कुश—
मित-कुशकेर औंठिएँ सनाथ ॥

[२८]

करी श्रृङ्खलावद्ध काज, शिक्षाहित
मुञ्ज - मेखलाधारि
चपला लसित शरद घन सँ—
उपमित सिततम शरीर चितहारि।
चित्रविचित्र सूक्ष्मरोमाञ्चित
चितमोहक मृगकृत्तिक कान्त,
उत्तरीय रखने, तुरीय आश्रमी—
भावना - भूषित शान्त॥
वीतराग, यज्ञोपवीत—
समलङ्कृत कृततप सँ कृशकाय।
ठाढ़ अभयमुद्रा देखबैछ
सदय भय आयल बुझि असहाय॥

[२९]

जानि तपोनिधि पर उपकारक—
निधि विधि-प्रेषित सन्निधि ऐल,
छनिक दुखहिँ पातरि अति कातरि
सिसकि कनैत झमैल घमैल।
गद्‌गद्‌कण्ठा उत्कण्ठा सँ
उठि कर जोड़ि निकट हुनि आबि,
कऽ प्रणाम, परिणाम वाम—
नयनक फरकब सँ उत्तम भावि॥
विनयेँ झुकलि सुरूप-सुधा—
कलसी सम उझकलि नहुँ नहुँ बोल।
बाजय लागलि प्रमदोचित—
लज्जा सँ गलि धूसर-पद च्योल॥

[३०]

झुकल देसरिआ केँ सरिआ कऽ
वृष्टि दैत नीरदक समान,
पाँतरगत रौदैल घमैल—
पथिक पर घन छाहरि उपमान।
विषय-सर्प-विष-यमन हेतु
मन-दमनकारि सनु मनु साक्षात,
मृतक हेतु भरि अमृत कमण्डलु
लऽ घुसइत गुण सँ अवदात॥
धन्वन्तरिक सरूप हमर—
दुख-जलधि-तरिक केवट समरूप।
के अपने, सपनेक दृश्य सँ
त्राण कैल सिंचि सलिल अनूप॥

[३१]

किन्तु अहाँक यत्न ई भगवन्!
बनत विफल, जैं प्रियतम मोर—
एतइ, कहल नहि जाय—
जाय रहला सुरपुर दऽ विपिन अथोड़।
जनिके कनिके विरह—
वेदना सँ राधा म्रियमाण प्रमाण,
व्रज समसान बनत, यमशान—
बढ़त, जनिके विनु हे मतिमान॥
तेँ करुणा वरुणालय!—
अन्तर्यामी! मुनिवर! कोनो उपाय—
कऽ निरपाय बनाय कान्ह केँ,
गोकुल ऊपर होउ सहाय॥

[३२]

कहइत अइ रूपेँ ढारि कऽ नोर सूपेँ।
मथलि विधि कुरूपेँ छिन्नवल्ली सरूपेँ॥
मुनि-पद पर बाला तुल्यबालाब्जमाला।
खसलि, कत कृपाला बाजि श्रीनन्दलाला॥

[३३]

यदपि मुनि विरागी, भक्ति मात्रानुरागी।
सुख-दुख-मति-नागीसँ परे मुक्तिभागी॥
बुझथि सपन माया-जाल सन्तान जाया।
सवतरि भ्रम-छाया, कल्पिते प्रेमकाया॥

[३४]

तैयो जानि न कोन शक्तिक बलेँ—
आसक्तिहीनो भने।
पीड़ाक्रान्त अशान्त गोपतनया—
केँ देखि कऽ ओ छने॥
अश्रुस्नात सकम्पगात
करुणा सँ पोछि बैसाय कऽ।
स्नेहाम्लान पिता समान हिय सँ
वात्सल्य दर्शाय कऽ॥

[३५]

मधुस्फीता वाणी कहल हित प्राणीक ललिते!
कन्हैआ लै देआ! दुख नहि करू ज्ञानकलिते!॥
अखण्ड - ब्रह्माण्डक्रम. हुनक सङ्केतहिँ बनै।
अजन्मा ओ मृत्युञ्जय अज बना मृत्युहुँ हनै॥

[३६]

पद्मा-पाणि-पयोज-पूज्य--
हिनके पद्माभपादामृतेँ ।
पूतात्मा ऋषिराज नारद--
कहाबी आज युक्तो ऋतेँ ॥
द्वैतध्वान्तमयी-निशान्तक रवि-
श्रीसच्चिदानन्द ई।
पाप-प्रात-निपात हेतु जगमे
ऐला सुकृत्कन्द ई ॥

[३७]

तनिक निधन-शङ्का प्रेमपङ्काश्रिता भऽ
मुखविजितभयङ्का ! निःकलङ्का ! वृथा कऽ ॥
अछि एकर निदाने आन, जे राम जाने ।
हम कहव धिआ ! ने या' न देखी धिआने ॥

[३८]

बिनु परिचय पातो ने कोनो पूछि बातो ।
कहथि हमर नामो, भेद की, हो न ज्ञातो ॥
ऋषि मुनि सब ज्ञाता, शोक सन्ताप त्राता ।
सुखशमक विधाता होथि सर्वस्वदाता ॥

[३९]

ई बात. सोचि ललिता चलिताश्रुधारा ।
व्यस्तालका सपुलका त्रुटिताञ्जहारा ॥
पञ्चोपचार विधिसँ विधिपुत्र अर्चा ।
कऽ बद्धपाणि क्रमबद्ध चलौल चर्चा ॥

[४०]

अहँ अन्तर्यामी मुनिवर ज्ञानी सदिखन पर उपकारी।
श्री हरिगुण गायक नवनिधि दायक त्रिभुवन वन सञ्चारी ॥
की करु हम सेवा हे भूदेवा वामा वाम स्वभावा।
भिक्षा गोस्वामी ! दऽ सखि स्वामी दर्शित करिअ प्रभावा ॥

[४१]

सुनि, गुनि किछु, मुनि नयन मुनि, समाधिस्थ भऽ धीर।
भावि भावि हरि चरित पुनि, कहल कथा गम्भीर ॥

[४२]

बाले ! बालेन्दुचूड़ामणि, अज,—
जनिके ध्यान मे नित्य झूमै
ज्ञानी ध्यानी तपस्वी जनिक—
छवि देखै हेतु आजन्म घूमै ॥
पावै तैयो न साक्षात—
श्रुति सकल सुना नेति सङ्गीत गावै।
से राधा-नेत्र आधा—
वश भय हुनके हेतु योगो जगावै ॥

[४३]

वत्से ! कृष्ण सतृष्ण योगजक्रिया--
द्वारा उदाराशयी।
राधात्मा निज मे मिलाय--
परमात्मा सर्व शास्ता जयी ॥
आत्माराम अनूप रूप बनला
निश्चेष्ट दूनू, अहाँ –।
मानी तेँ, न अभेद भेद बुझि कऽ
निर्वेद बाते कहाँ ? ॥

[४४]

सानन्द नन्द केर नन्दन और राधा।
से मानि मानिनि! बुझू नहि प्राण बाधा॥
धन्या सखी छथि जतै वृषभानुकन्या।
तै ठाम जाउ, जगती जगतीक मान्या॥

[४५]

स्तव नव कमलाक्षी! पूर्ण या' ने सुनैवे।
हम दुहुक न क्रीड़ालस्य कें तोड़ि पैवे॥
सखिगण झखि चिन्ता सँ हेती खिन्न वाले!
तएँ कहु सव जा कऽ भक्ति श्रद्धाब्जमाले॥

[४६]

सुनि विधि-सुत वाणी शुद्ध वाणी समाने।
चललि मचलि गोपी 'पा' जेना त्यक्त प्राणे॥
मुनि पद पर माथा टेकि सद्यः सनाथा।
किछु छन पहिने जे वेदना सँ अनाथा॥

[४७]

पुन पुनमानी मे महान मुनि
आसन अपन लगाय,
हो जय जाग जनिक, तनिके
जागक हित किछु मुसुकाय।
काय झुकाय पहुक पदपङ्कज—
पर, कऽ दुहु दृग बन्द,
लगला करै वन्दना लगले
पीबि भक्ति मकन्रद॥

—:०:—

ते
स
र
स
र्ग

[१]

जयति निरञ्जन, सुरमुनिमन-
रञ्जन, खलगञ्जनकारि,
त्रिविधतापभञ्जन, निश्वास-
प्रभञ्जन, जनचितहारि ।
पुरुष पुरातन होइतहुँ नवतन,
आदि रहैत अनादि,
निराकार साकार तदपि,
साक्षी सरूप मीनादि ॥
रहि निरीह लक्ष्मीवश वसल-
जलधिमे फणि - पर्यङ्क ।
जनहित वृन्दा - सेवथि जे
बुझितहुँ वृन्दाक कलङ्क ॥

[२]

रहितहुँ सदा धियानगम्य
कथमपि जे धिया न गम्य,
स्तुति वाणिक रहितौँह विषय.
वाणिक अविषय, नहि दम्य ।
निर्गुण तदपि त्रिगुण-सृष्टिक
सञ्चालन - कला - प्रवीण,
कारण तदपि अकारण,
स्वाधीनो भक्तैक अधीन ॥
भूमि – भार - वाहक रहितहुँ
गोलोक केर आलोक ।
जयति सच्चिदानन्द--
नन्द–नन्दन से कृतखल शोक ॥

[३]

अगणित भुज मुख उदर नयनयुत
भुजग – पीठ आसीन,
आनन दीप्त हुताशन-
सनकादिक सेवित श्रुतिलीन ।
तेजोराशि – प्रकाशि–
दशो दिक्चक्र चक्रधर श्याम,
भव-गद-वैद्य तथापि सगद,
गद्गद लखि भक्ति ललाम ॥
रूप असङ्ग सशङ्ख तदपि,
पद्मज–कारण कर पद्म ।
जयति किरीटी–सखा किरीटी,
आगम निगमक सद्म ॥

[४]

सोम-पायि-उन्नयन हेतु,
रवि-सोम-नयन विकराल,
प्रलय-काल केर महाकाल-
भ्रू भीषण चढ़ल अराल।
ग्रीष्मक मध्यदिनक कोटिक
दिनकरक दीप्ति-उपमेय,
अप्रमेय वल दवल जनक
उद्धारक त्रिभुवन गेय॥
चकित त्रस्त सुर असुर, सिद्ध-
मुनि किन्नरगण सँ हृष्ट।
जयति प्रलय कारी कारीवपु,
भक्ति गुणेँ आकृष्ट॥

[५]

कण कण ओतप्रोत, सृष्टि-
सरिताक स्रोत केर हेतु,
सकल - सत्वकेँ सत्वगुणेँ
जे पालि उड़ावथि केतु।
अन्त करथि अन्तकहुँक,
तामस होइत ताम सम लाल,
हर तन धऽ कऽ ताण्डव - नर्तन
प्रलय करथि बुझि काल॥
पाणि - पद्मसँ पद - पङ्कजकेँ
करइत मुखक प्रवेश-
जयति सुप्त वट - पत्र - पुटकमे
बालमुकुन्द विशेष॥

[६]

द्वैत - ध्वान्त - निवारण -कारण,
कृत वारण पति त्राण,
पत्ती प्रिय रहितौहुँ लेथि जे
दुष्ट विपत्ती - प्राण।
उद्दामो रहि दामोदर,
बिनु दामो भक्तक हाथ-
विकल, विकलकें अविकल-
करुणासँ कऽ देथि सनाथ॥
शुद्ध - यशो-मति उत्पादक,
स्वयमेव यशोमति बाल।
जयति पूर्ण आनन्द जनक से
सुविदित नन्दक लाल॥

[७]

स्वयमक्षर रहितहुँ क्षर—
जगन्निवास पीतकटिवास,
दधि-तनया-पति भऽ दधितस्कर-
कर्म - निरत सोल्लास।
विश्व - व्याप्त - विराटो
वामनयी वामन विख्यात,
नयन अगोचर, तैयो गोचर
गोचरबाहैँ ख्यात॥
मुर-रिपु मुरली-वादन-पटु,
परमेश रहैत रमेश।
जयति गोकुलाधीश-
गोकुलाधिष्ठित जे नटवेष॥

[८]

तनिके पदपङ्कज - रज - सम्पद
पद पद पर हम पाबि,
भ्रम न कनेको भ्रमन करी
अग जग मे गुण गण गाबि।
प्रकृति सङ्ग सोमङ्ग--
समाधिस्थित बुझि दुहुक बिहार,
दरसन प्रिय तनिके दरसन हित
ऐलहुँ लऽ हिअ हार॥
किन्तु गहन ई विषय-गहन
ऐ मे नहि सभक प्रवेश।
हमहुँ अधम की बुझितहुँ, जौं--
पबितहुँ न पहुक आवेस॥

[९]

लहरि-महालय-प्रलय - जलधि मे
जखन डुबा कऽ वेद,
हड़सङ्गा सङ्खासुर—
सुरमुनि कें देलक निर्वेद।
भेल बन्द मख, शतमख आदिक
यज्ञ भाग नहि पाबि,
दूवर भेला, गरजि दूवर
निशिचर दौड़ै मुहँ बाबि॥
देखल अछि तै खल कें मारि
बचौल :अहीं श्रुति नाथ!
हो स्वीकार प्रणाम, मीन-
वपुधारी बना सनाथ॥

[१०]

जलाकीर्ण-जगती, निधि मे
शेषक शय्या पर देव !
सुप्त अहँक नाभि-कञ्जस्थित-
विधिक प्राण झट लेब।
ई विचारि अविचारि क्रुद्ध-
मधु कैटभ युद्धक लेल,
ठोकि ताल लग आबि लगौलक
ताल नितान्त बलेल॥
अपन आदि शक्तिक जगौल
तजि निन्न दुहुक कऽ नाश।
मधुसूदन विख्यात अहीं,
से अछि जनैत ई दास॥

[११]

स्कन्ध-कम्प-निर्बन्ध-विलग-
केसर सँ निधि-जल फाड़ि,
सद्यः पङ्क अङ्क परिलक्षित
धरा समस्त निहारि।
दश-दिग्वसन दशन पर धऽ कऽ
करइत शब्द महान,
निष्कलङ्क रहितहुँ सकलङ्क
मयङ्क बना उपमान॥
देव दनुज मुनि मनुजहिं पूजित,
महावराह सरूप।
दोसर नहि, अपनहिं हरि,
साक्षी तकर पुराण अनूप॥

[१२]

परिवारैक विभक्त-भक्त केर
कथ्य तथ्य हो ज्ञात,
तथा यथार्थ कथा सबतरि प्रभु
हो वसुधा मे ख्यात।
खम्भ फाड़ि विस्फारित-मुख तेँ
धऽ नृसिंह आकार,
हिरण्यकशिपु हिय निज खर नखरहि-
सँ चीरल साकार
स्तुति सुनि पुनि प्रह्लाद केर
साह्लाद गेलहुँ निजधाम।
देखि एक टक से नाटक,
पूरल हमरो मनकाम॥

[१३]

छीनि विरोचन-तनय विरोचन-
केर सकल सम्राज
सुरपुर असुरपुरी मे परिणत
कैल, किन्तु निर्व्याज।
जप तप दान यज्ञ कीर्त्तन मे
मन लगाय सदिकाल,
कते कल्प धरि सुख अनल्प
इन्द्रत्वक भोगि नेहाल॥
दुर्भाग्यैक अधीन दीन-
सुरवृन्द लगौल गोहारि।
इन्द्रानुज बनि अहीँ-
दनुज-दल केँ वश कैल मुरारि!॥

[१४]

छी तकरो प्रकार देखनें-
पटुमति - वामन - वटु रूप,
याचल अचल चित्त बलि सँ महि
तीन डेग सुरभूप ! ।
या' तत्रत्य-दैत्य सुनि हसिते-
छल ता' छल सँ नाथ !
विक्रम तेहेन त्रिविक्रम ! कैलहुँ,
बलि क्रम देखि अनाथ ॥
बनि विराट राक्षस सम्राटक
चौदह लोकक राज ।
दू डेगहिँ मे सठा, बान्हि बलि-
देल इन्द्र केँ ताज ॥

[१५]

माप करै खन मापति ! तुअ-
इन्दीवर सम वरजानु,
सित - स्वर्गङ्गा - सलिल - मिलित
यामुन-जलौध छल मानु ।
आगत-पुत्रिक भ्रम मे पड़ल-
ससंभ्रम स्वयं दिनेश,
अपन उपग्रह ग्रहयुत छनभरि
मिलि कैलनि आवेस ॥
पल मे किन्तु टपल पद निज रज-
सम्पद दैत अशेष ।
चानक हृदय-मचानक की थिक
तकरे चिह्न विशेष ॥

[१६]

निधिक मथन खन मन्दर–
मन्थन दण्डक बनि आधार,
कमंठ-कमठ ! विना अपने के
लितै कने से भार ।
सुधा - हरणहित रण - दुर्मद–
दानव केँ ठकबा हेतु,
रूप अनूप मोहिनिक के
धऽ सकिते यदुकुल - केतु ॥
असुर निकट सुर मृत सम,
अमृत न कथमपि करितथि पान ।
आवि कहाँदनि सँ न अहाँ यदि
रचितहुँ एहेन विधान ॥

[१७]

अहह ! बरहवर्षा अकाल मे
विनु वर्षा संसार,
जखन दग्ध छल भेल–
विदग्ध विना सबटा श्रुतिसार ।
पाठन - पठन - रहित छल—
लुप्तप्राय, तखन अनपाय—
देह सदेह अहीँ धारण कऽ
सस्कृति लेल बचाय ॥
मेधा केर शाश्वत मेधा सँ
निगमागम केर नाथ !
संस्मृति कऽ स्मृति-रक्षक !—
दत्तात्रेय सरूप सनाथ ॥

[१८]

जखन अनन्त ! अनन्त-सबल-दल—
दल सँ मण्डित भेल,
आपाताल मूल 'आ' पातानहुँ—
ख्याति कें गेल ।
लङ्कारचकजयी सहसदढ़—
भुज शाखाऽलङ्कार
अर्जुनमित्र ! सहस्राजुन-विष—
तरुछायें संसार ॥
उन्मन बनल, अनल सम दीपित—
परशु-हस्त झट आबि ।
झंझट टारल काटि ताहि अहँ
विश्व रहल गुण गाबि ॥

[१९]

हवनकुण्ड मे कुण्डलयुत—
दशमुण्ड हवन कऽ धीर
पुण्डरीक सम प्रियत्रिपुण्ड—
श्रीशिवक ध्यान रत वीर ।
निधनमुक्ति धन पावि—
पावितात्मा-सुरगण कें जीति,
लब्धदर्प - कन्दर्प · दलन सँ
जे उद्दण्ड अभीति ॥
बनि लङ्कालङ्कार चौदहो—
लोकक लऽ आलोक ।
आकुल कुल कें कैल दैत जे
दैत विश्व कें शोक ॥

[२०]

जकरे बीसो बाँहि – पालिता—
वाहिनीक सुनि नाम,
सुर नर किन्नर असुर त्रस्त भऽ—
कऽ नुकाय, तजि धाम।
जे कैलास सलास उठाओल,
सहित उमा त्रिपुरारि।
रूसलि बैसलि शिवा जाहि सँ
असमय प्रलय विचारि॥
तेजि मान डर सँ हरिनीक समान
चकित चित भेल।
दैत विजय मृत्युञ्जय केँ
भुजपाश-बद्ध कऽ लेल॥

[२१]

जकर वक्ष पड़ि अटल दन्त
सुर – दन्तिक टुटल तुरन्त,
तथा कथा की आनक शानक
मुरुछल पवि पर्यन्त।
नहुँ नहुँ मग चलितौहुँ जकर
डगमग वसुधा सम्पूर्ण,
भैरव-रव होइतहुँ जकर
ग्रह-विग्रह चूर्ण विचूर्ण॥
जकर पावि शङ्का लङ्का तजि
अलका सेवल कुबेर।
भेल विमान विमान अरपि निज
बूझि न वेर कुबेर॥

[२२]

भुवन सुन्दरी कृशोदरी-
पत्नी तजि तजि दिक्‌पाल,
पाल पड़ल आमक सम सेबल
निवल दरी धुनि भाल।
जे विरक्तहुँक लेल रक्त कर
कऽ जप याजन बन्द,
तेज तेज लखि जकर, उग्रता--
तेजल रवि भऽ मन्द॥
जकरा डरेँ दण्ड दऽ अरपल
दण्ड अपन यमराज।
पाशी जकर उपासी दऽ कऽ
नाग पाश तजि लाज॥

[२३]

चानक हेतु तेहेन चानक--
ओ देल, पावि नित त्रास,
चारू पहर पहर निशिमे दऽ
पुनिमक देथि प्रकाश।
हव्य हव्यवाहन न पावि कऽ
बनल छला निस्तेज,
वासव वास बनौल अपन
काननक कण्टकित सेज॥
रुचि अनुसार सुगन्धिसार लऽ
सेवथि सतत समीर।
त्यागि गर्व गन्धर्व करथि
गुणगान सभास्थ अधीर॥

[२४]

झूकल सकल विकल भऽ सज्जन,
लागल दुष्ट अकाश,
मर्यादा - निधि - मर्यादा--
भेल भङ्ग, निहत उल्लास।
शान्ति-सरोजक उपर पातकिक
क्रान्ति - तुहिन पड़ि गेल,
रसा रसातल चलल, दशानन--
दशा तेहेन कऽ देल॥
कानथि साधु अकानथि, ने—
प्रभु लेथि किऐ' अवतार।
की निन्नक मातल हरि सुनथि न
क्षमातलक चीत्कार॥

[२५]

वश, भऽ भक्त-विवश अपने
लोकाभिराम बनि राम,
दुष्टक दण्डक हेतु गेलहुँ दण्डक
तजि राज्य ललाम।
अवधक वासी होइतहुँ—
निशिचर-वधक प्रतिज्ञा कैल,
आब जान की? होइत जानकी-
हरण बात मन धैल॥
बान्हि समुद्र सवंश रावणक
कैल अहाँ विध्वंस।
स्मरण सेहो रणकथा ओहिना
अछि यदुकुल-अवतंस!॥

[२६]

हाथ पड़य मम जकर माथ पर
भस्म सैह बनि जाय,
ई वर वड़दवाहनक लऽ वृक
वृकसम निशिचर काय।
हरक नाश कऽ हरब पार्वती
से पातकी विचारि,
शिवक अशिव करबा लै दौड़ल,
ओ कैलासहुँ छाड़ि ॥
घुमला तीनू भुवन, दुष्ट ओ-
तजल न कौखन सङ्ग
अहीं ओकर कर धरा ओकर शिर,
कैलहुँ भव-भय-भङ्ग ॥

[२७]

हैब तही देवक सेवक, जे
होथि क्षमा-भण्डार,
बूझि चतुर्मुख आशुतोषहुँक
केहेन रोष-अङ्गार।
भृगु अकुण्ठ-गति जा कऽ पुनि
बैकुण्ठ, अहाँ कें सुप्त-
देखि वक्ष पर चरण चलौल,
सदाचरणहुँ कऽ लुप्त ॥
मुदा हुनक पद पकड़ि उदार!
अहाँ कहि देलहुँ हँसैत।
कहाँ अहाँक कमल-पद, चारू-
चारु पदार्थ बटैत ॥

[२८]

कहाँ वृत्रघाती-वज्रक सन
छाती हमर कठोर,
लागल हैत कतेक चोट ?
अछि बड़ कचोट मन मोर ।
कहि पुनि पैर दबावऽ लगलहुँ
नहि कहितहुँ भृगु केर,
'आ' शाश्वत भृगुलता बनाओल
उरलताक सुम फेर ॥
अही क्षमाक विभव सँ भव-
कमलोद्भव सभक प्रधान ।
गणित भेलहुँ अगणितलीला कर !
हे करुणाक निधान ॥

[२९]

सकल सकल आंशिक विभूति छल,
जे लखि छलछल भेल,
मम युग-लोचन युग युग मे प्रभु !
परमानन्दक लेल !
किन्तु एखन पूर्णावतार लऽ कऽ
क्रीड़ा विस्तार,
कऽ रहलहुँ अछि व्रज पुनीत-
रज मे हरैत महिभार ॥
धन्य यशोदा नन्द एखन
जे नन्दन केर आनन्द ।
पाबि रहल छथि, पावित कऽ कुल-
जनिकर पुत्र मुकुन्द ॥

[३०]

धन्य राधिका, जनिका तुअ-
प्रेमाधिकार सदिकाल,
औखन आकर्षण जनिकर कऽ
बना अभिन्न रसाल।
तूर्य अवस्था मे चातुर्य विधान!
करी मधुपान,
मूलाधार दबा षट् चक्रहुँ-
भेदि हंस सँ प्राण-।
मिला इड़ादिक केँ सक्रिय कऽ
प्रकृति कृतिक भऽ अग्र।
कऽ रहलहुँ अविराम रमण,
हे आत्माराम! समग्र॥

[३१]

ललिता धन्य भक्ति मे बलि भऽ
जे की दै छलि प्राण,
जनिक चरित-सौरभ जन रभसि
करत युग-युग आघ्राण।
अन्या सकल - गोप-कन्या-
धन्या, जे आठो याम,
देखथि इन्दीवरनीलाकृति-
प्रभु-लीला अभिराम॥
धन्य सिनेहक आलवाल-
गोपाल - बाल व्रज केर,
भूमि उठै नित एहि भूमि मे
जे सुनि वंशिक टेर॥

[३२]

धन्य गोकुला केर गाय,
गायक बनि जकरा सङ्ग-
कऽ रहला चरबाहि-
बिना परबाहिं धूसरित अङ्ग ।
धन्य गोकुला नन्द ग्राम
बरसाना भूमिक भाग
जकरा रज़ मे विरज विरज--
वान्धवहुँक ई अनुराग ॥
हरि -- पदारविन्दाश्रय-
वृन्दावनक धन्य अछि कुञ्ज ।
गुञ्जाहार विहार करथि जत
सङ्गहिं . गोपिक पुञ्ज ॥

[३३]

युग युग सँ हरि-रूप ध्यान मे
आनि हुनक अनुरूप,
वर्ण पाबि धन्या छथि कृष्णा,
जैँ कृष्णाङ्घ्रि अनूप ।
सम्प्रति प्रतिदिन परसि रहल छथि,
वास्तव श्यामा नारि,
सदा सुखद दृष्टान्त व्यक्त,
जैँ हेतुक लुब्ध मुरारि ॥
गोवर्द्धन धन, जनिका की
कमला-कर्कश-कुच लागि- ।
लबल दबल पुनि सबल--
नखहिं रखलन्हि सातो दिन जागि ॥

[३४]

धन्य नीप-शाखा जै' ऊपर
बैसि विशाखा आदि
गोपी केँ बजबै छथि--
मुरलीकेँ बजबैत अनादि।
शिखि-कदम्ब अछि धन्य
हिनक सिखिसिखि जे नृत्य नेहाल;
तरु-सुम धन्य, तरुण-वारिज-
लोचन पर भर सदिकाल॥
धन्य शक्ति केर शक्ति जनिक
सङ्केत पबैत किनेक।
परब्रह्म अपनहुँ नचैत छथि
खेल रचैत अनेक॥

[३५]

हो अभिलाख, लाख चौरासी--
मे जत पाबी देह,
तुअ लीलाक भूमि प्रभु देखी
चूमि रचैत सिनेह।
गोपी--जनक चरण-रज-पावित--
व्रज सन तीर्थ न आन,
तजि सम्बन्ध बन्ध ममतादिक
जे तोहि अरपल प्राण॥
धन्य अहाँक पिरीति रीति,
गोलोक सनक तजि लोक।
मुदित अनारि गोपनारिक
छवि मे दी निज आलोक॥

[३६]

स्तुति करु की करुणानिधान !
हम अविनय, बिनय न लेश,
शारद शेष गणेश आदि जत
मूक रहैत विशेष ।
तजि समाधि हे माऽधिष्ठित पद-
खोलिअ लोचन कञ्ज,
बुझि प्राणकबाधा राधा केर
छथि गोपी गण पञ्ज ॥
तथा समेटि प्रकृति रहबे तँ
मेटि जैत संसार ।
तेजि प्रकृति प्रकृतिस्थ होइ तेँ
मोहन जगदाधार ॥

[३७ [

स्तुति सुनाय त्रिभुवन-नायक केँ
रोमाञ्चित चित थीर,
सञ्चित-भक्ति-भाव सँ अञ्चित
सञ्चित - सम्मुख धीर ।
नयन-गभीर पात्र सँ, स्मृत—
आभीर - कन्यका - भाव,
हर्षित-चित्त-महर्षि उझिलि देल
नीर, पुनीत प्रभाव ॥
रुद्ध-कण्ठ सोत्कण्ठ पुनः
टकटकी लगा चिरकाल ।
पीबय लगला रूप-सुधा
वसुधाक अलभ्य रसाल ॥

[३८]

करइत ओ रस - पान—
विसरि सुधि बुधि सुधि वृन्द प्रधान,
मीलित-नयन निमग्न ब्रह्म—
नदमे भऽ मग्न महान।
जानि न रमाजानि केर कृपया
एहि दशा मे लीन,
वीतराग विधिपुत्रक वीतल
समय कते अनधीन ॥
पुन, 'पुनवान वत्सहे' सुनितहिं
ककरो कोमल बात,
देखल अग्र समग्र गुणार्चित
स्वयं नीलजलजात ॥

[३९]

अकचकाय दण्डायमान
कऽ काय वन्दना हेतु,
पतित-पावनक पैर उपर
भऽ गेल पतित मुनिकेतु।
भक्तिहरितमन श्रीहरि तत्क्षण
देखि विलक्षण भाव,
उठा लगौल हृदय--
निगमागम गौल प्रशस्तप्रभाव ॥
तथा दैत आसीस सीस पर
अपन वरद-कर राखि।
स्थित अपने अध्युषित शिला पर
वैसाओल श्रुतिशाखि ॥

[४०]

अर्घ अनर्घ नयन-जल दऽ
आनन्द-पुलक-कुश सङ्ग,
कुशल पूछि खल-गज-अंकुश प्रभु
छबिजित कोटि अनङ्ग
सस्मित अमित-शक्ति मितभाषी
दशन-अंशु सँ श्वेत--
वन बनबैत ललित-वनमाला-
कलित कृपाक निकेत ॥
नारदकेँ कहइत भेलाह
विरहक दुख गुप्ते राखि ।
क्लेश अपन आनक लग लगले
कोविद कहय न भाखि ॥

[४१]

ई धन्य वन्य-महि हे ऋषिराज ! आज,
निर्व्याज-विप्रहुँक आसिरवाद भ्राज ।
जैं कल्पपादप समे अपनेक पाद
हो दृष्ट उत्तम-अदृष्टहिं निर्विवाद ॥

[४२]

सन्त्यक्त-राग जगतीहित सानुराग,
ज्ञानासि-नाशित-तमोवपु सिद्धराग ।
निर्द्वन्द्व मच्चरणद्वन्द्वलयी अनन्य
के पाबि पाहुन अहाँ सन हो न धन्य ॥

[४३]

संसार सँ रहि उदास दयाक दास,
कौपीनवास वनमे तरुमूलवास ।
मद्भक्तिटाक विसबास रखैत खास,
ई पाबि पाहुन न हो ककरा हुलास ॥

[४४]

धिक्कारि स्वर्ग अपवर्ग सुखो प्रसन्न,
षड्वर्ग लीन लखि जीव विषण्ण सन्न।
उद्धार हेतु तकरे, नयनाम्बुधार
वर्षा करैत सब लोक घुमी उदार॥

[४५]

से पावि पाहुन गृही जन पावितात्मा,
ओ तुष्ट पुष्ट हमरो वनि जाय आत्मा।
विप्रै कवन्दि पद वन्दित क्यो कहावै,
तें देखि भूसुर, सुरासुर माथ नावै॥

[४६]

स्तुति कऽ मुनि मूर्धन्य—केर पाणि पुनि हरि पकड़ि।
कहल कथा हम धन्य, यदपि विलोकन मात्र सँ॥

[४७]

तैयी कनेक अपनेक मुहें मुनीश,
की हेतु आगमन केर कृपा-नदीश !
जिज्ञासमान मम मानस तें नितान्त,
वृत्तान्त से कहु कृपा कय पूर्ण शान्त॥

[४८]

श्रीगोविन्द-मुखारविन्दक कथा—
पीयूष कें पीबि कऽ
किञ्चित् गुम् रहि वारिवाहक जकाँ
श्रद्धा-जलें लीबि कऽ।
'आ' मोदाश्रु-सुवृष्टि-सृष्टि मुनि कऽ
रोमाञ्च भूषा बना
दून् टा कर जोड़ि बोरि बजला,
वाणी सुधा मे जेना॥

[४९]

हो कहिओ नहि चाड़ि, करगत चारि पदार्थ हो।
नाम तोर उच्चारि, देखी नित नव खेल टा॥

[५०]

हे नाथ! लाथ नहि, ताहि स्वभावकेर
पौने दबाव भवनाथ! घुमैत भेर।
झूमो निरन्तर देखैत अहींक लीला
नीलाब्जरूप! अपरूप विधान शीला॥

[५१]

हे हे त्रिविक्रम! तही क्रम सँ घुमैत,
विश्वस्त-भक्ति-रस-मस्त मनें झुमैत।
ई हो विलोकल सदा कल मूर्ति तोर,
राधा-चकोर-विधु भक्तक चित्त चोर॥

[५२]

'आ' बुझि पौलहुँ आज, स्वयं अहूँ स्वच्छन्द नहि।
करी सकल से काज, जे शक्तिक सङ्केत हो॥

[५३]

तेँ अपनहुँकेँ कखनहुँ काल बचावय अपने माया,
सकल जीव केँ नचा सृष्टि भरि जे षड्वर्ग सहाया।
मुग्ध बना कऽ घोर अघोर क्रियँ, जनु प्रिय केँ जाया,
हँटबितौहँ जे हँटल न मानै अटल प्रकाशक छाया॥

[५४]

तकर मुख्य-कर-कामक विजय, विजय-सुहृदहुँ पर देखी,
अच्युत! पुनि ककरा न पथच्युत करत सठा शठ सेखी।
ई विचारि, चारित्र्य न ककरो रहि सकैछ हम मानी,
गोपीजनक सतृष्ण कृष्ण, तँ के मदनक लग मानी॥

[५५]

कहनहुँ छल ओ एक दिवस अभिमान विवश उत्पाती,
गुरु गर्जन करइत कुसुमायुध, जे सुनि लागल दाँती।
सकल विश्व जीतल, रहला अछि नन्दक नन्दन बाँकी,
हुनको कोना परास्त करब, से देखब मुनिवर! झाँकी॥

[५६]

समाधान हम देल, हरल प्राण हर, तदपि ई।
करह घमण्ड वलेल, जरय जौड़, ऐंठन न जर॥

[५७]

तखन कहल ओ विषमनयन सँ भसम भेलहुँ, सब जानै।
तदपि अनङ्ग रहैत हमर लोहा के जग नहि मानै।
'आ' फनकय लागल, फनकय विषधर सम जौं न कपाली-
समाधिस्थ रहितथि, कथमपि रहितनि नहि मूँहक लाली॥

[५८]

तें जे हमरा सङ्ग असङ्गत करत दर्प बनि ज्ञानी,
सुन्दरीक सेना से नामी साजि हमहुँ अभिमानी।
आलम्बन उद्दीपन सञ्चारीक सुभट कऽ बङ्का,
शृङ्गारक अङ्गार शस्त्र लऽ बजा नूपुरक डङ्का॥

[५९]

ताहि सिद्ध कें पुष्प-वाण सँ जौं नहि विद्ध बनाबी,
'आ' तै सेना केर चरण पर शरणक हेतु कनाबी।
तँ हम हारि मानि तै' जन सँ जनके हुनका मानी,
फेर न साधु सन्त कें फेरक हेतु चाप निज तानी॥

[६०]

ई ऐलहुँ कहवाक- हेतु, किन्तु लखि रङ्ग, तव।
छी हम बनल अबाक, दिग्विजयी बुझि काम कें॥

[६१]

सुनि हरि मन्द-मदन केर गर्व अमन्द, यदपि हँसि देले,
उदित अरुण-अरुणांशु-कलित मुख-इन्दीवर भऽ गेले।
मन्मथ – मान – भङ्ग – सूचक भ्रूभङ्ग तदपि भयकारी
व्यक्त भेल अव्यक्तक मुखमण्डल पर धनु अनुकारी॥

[६२]

'आ' गभीर-वारिद समान आभीर-कन्यका-प्रेमी-
कहल, वेस कहलहुँ नारद! आवेस-विवश भऽ क्षेमी।
चेत न छैक मीनकेतन कें दै अछि मम शिर हाथे,
ढोंढक मन्त्र जानि नहि दै अछि हाथ दराधक माथे॥

[६३]

कऽ दिश्रौक सवधान, एतय सव धान न वाइस पसेरी,
पूर्ण करौ उत्पात पातकी बजा अपन रण-भेरी।
शुचि-दल निशि मे हम नारद शारद वर्णित शृङ्गारँ—
सज्जित जितमेनका अपरिमित वाला विच अविकारँ॥

[६४]

बहुतो रास रास आदिक करवे मनमोहक क्रीड़ा.
सुर-सुन्दरी नुकैत दरी मे देखि पाबि कऽ व्रीड़ा।
रति-साधन मे कमी न रतिओ भरि रहतैक, अकामी—
चित्त न चञ्चल हैत हमर, ओ चित्त खसत खल नामी॥

[६५]

हे विधि-तनय! अही अभिनय—
विधि मे औरो किछु लीला,
दृश्य मनोरम हैत, कते रमणी
हमरे रति शीला।
जे की मम रामावतार मे
आकर्षित छलि रामा,
ब्रजवनिता बनि आइलि छथि
सव हमरे हेतु सकामा॥

[६६]

तथा कते गोलोक केर शापित-गो-लोक-जयित्री,
व्रजवासिनी वासना-वासित छथि मम हित व्रतकर्त्री।
सबकेँ योग-जनित संयोगक शाश्वत सुख हम देवे,
'आ' वैरागक राग गबा मुक्तिक पथ ऊपर लैवे॥

[६७]

विफल-काम भऽ काम वाण निज, व्रजभरि सभय चलौते,
अमर-भक्ति लखि हमर—गोपवनिता लग पुनि नहि औते।
रहितहुँ भिन्न अभिन्न बना-सबकेँ, मथुरा हम जैवे,
तखन पाविखन, छी यदर्थ—आयल हम से कऽ पैवे॥

[६८]

अही काण्ड हेतुक अकाण्ड—भूपृष्ठ हमर ई ज्ञानी !
बूझि सकत कत उच्च भाव ई संसारक अज्ञानी।
माया केर अमा यावत् 'ता' भानु – ज्योति के पौते,
ममता विनु तजने मम तावत् चरण-निकट के औते ॥

[६९]

नारद सुनि प्रभु बात, भक्ति – जात – जल-युत – नयन ।
आ रोमाञ्चित गात, जोड़ि पाणि लगला कहय ।

[७०]

नाथ ! विगत – सन्देह, कैल अहाँ ऐ' दासकेँ
देखब दृश्य सदेह, करब जेना मन्मथ - विजय ॥

[७१]

अनुशासन दी आब, गरुड़ासन ! प्रस्थान हित ।
तुअ पद – भक्तिक भाव, नाव बनौ भव वारिधिक ॥

[७२]

आ अविलम्ब अहूँ अवलम्बन—
जाय दियौ वृषभानुलली केँ,
जे विरहेँ विधुरा विधु–वन्द्यमुखी—
छथि मूर्च्छित दर्शन-ताकेँ
ऐल छलीह समाद कहै, ललिता मलि हाथ गेली बिकला भै—
देखि दशा तव कैतवहीन ! जनैत मली न एना अबला केँ ॥

[७३]

ई बाजि वाजि–चित धीर बना मुनीश,
गोपीश-पाद-फुट-पद्म नबाय-शीस ।
पाथे अनूप युग–रुप, मनैक झोरी-
मे लऽ गबैत चललाह लला-किशोरी ॥

—:०:—

चा
रि
म
स
र्ग

[१]

गमन करैत मुनिक पुनि—
राधा-मिलन हेतु उन्मन घनश्याम,
झटपट चलइत भेला, पीत-पट
फहरबैत छबि-निर्जित काम।
कोन कुञ्ज मे हमर मत्त-
कुञ्जर-गमनी छथि से नहि जानि,
तेँ चञ्चल-चित तकइत चहुँदिशि
डेग बढ़ावथि सारङ्गपाणि॥

[२]

पथ पर चरण, विकल हिय विचरण
करइत अपन प्रेयसी-सङ्ग,
रसना शुद्धाचरण - राधिका-
नामोच्चारण - लीन अभङ्ग।
चकित-हरिण-दृग-चारण युग-
लोचन सञ्चरणशील सब ठाम,
त्रिभुवन-पूज्य-चरण - श्रीकृष्णक,
पुरश्चरण जनिके सब धाम॥

[३]

खन धिक्कार देथि अपना केँ,
कालि्ह बेकार कैल हम हास,
तिलकेँ तार बना तिलनाशा
जाहि हेतु कऽ रहलि उदास।
कोन अरण्य कोनमे छपकलि-
हेती मृदुल - कलिकाक समान,
के से कहत ? घुमी हतभाग्य जकाँ
वन उपवनमे तेँ म्लान॥

[४]

घुरि फिरि लेथि कदम तर दम,
सकदम पशु पक्षी लखि ई हाल,
पुनि झट झटकि चलथि ताकथि
राधाक ताक से नन्दक लाल।
देखि लबल - तरु - नव-पल्लव,
गुनि प्रियापाणि दौड़थि मुद पाबि,
परस होइत टप टप रस नयनक
चुम्बथि भ्रम-विभ्रम थिक भावि॥

[५]

खनहिँ विचारथि पूछल नहि—
सुरमुनि सँ ललिता की कहि गेलि,
कहाँ हमर प्रियतमा' तमाम
विपिनमे तकितहुँ दृष्ट न भेलि।
भऽ प्रमादवश तैं' समाद केँ
व्यक्त न करा भेल तत्काल,
तेँ औनाय रहल छी, प्रकृति
बनाय बिगाड़ि रहल अछि भाल॥

[६]

रूसब बौसब तँ बहुतो दिन
होअय, एहेन कहियो नहि बात,
कोन अघात ? नुकाय काय
नहि देथि दरस चम्पक-दुति-गात।
ओ मुसुकान, कान धरि पहुँचल—
चञ्चल नयन, सुधा सन बोल,
छबि घनसार-सार, पाकल-कल—
सेव सेवके जकर अमोल ॥

[७]

से कपोल केसरि-कण-मिश्रित-
सरिता-सेवित सन साक्षात्,
लटकि जाहि पर लट किछु कुञ्चित
चित न ककर मोहै कऽ मात।
भ्रम हो भ्रमय भ्रमर सरसिज पर
देखि देखि जे अनुपम रूप,
सदिखन दृश्य, एखन से-
की कारण अदृश्य भऽ गेल अपरूप ॥

[८]

विनु ताम्बूलहुँ लाल अधर-
तैं विनताक न ओ विसरल जाय,
जकर न गुन-लव अपना मे बुझि
ल्लव लव पल्लव बनि हाय !
ओ दनूफसन दशन, अधर पड़ि
जकर अंशु-अंशुक अवदात,
हो सन्तुलित ललित-विद्रुम-रुचि-
मिलित-मोति-सुषमा साक्षात

[९]

विपुल-नितम्ब-विलम्वमान-
गूह्ल-प्रसून-मण्डित-कचपाश,
जगतिक कारी-भुजग एतइ
ककरा न करा दै अछि विसवास।
ओ चम्पक-गौरव-रण-विजयी
गौर वरण हृत-सुवरण-मान
वरणन करइत बरण न भेटय,
अनन्वयालङ्कारक भान॥

[१०]

सरसिज सरमे सड़त, शीघ्र-
झख झखइत होयत प्राण-विहीन,
हरित-विपिन मे हरित-ज्ञान--
हरिणी-मण्डल चौंकत भऽ दीन।
खञ्जन खञ्ज न होयत की,
भऽ शीर्णपक्ष बुझि प्रवल विपक्ष,
बर्जित जौं लगौत हुनि नयनें
सरस जनें वर्जित प्रत्यक्ष॥

[११]

सुर-सुन्दरी सबहुँ सँ सम्मानित--
सुरङ्ल ओ भ्रू असमान,
मर्दित-मान कमान जाहि सँ
मानल मानलता युग मान।
जाहि मध्य सिन्दूरी-बिन्दु
उदित राका शरदिन्दु सरूप,
जनु सहस्र दल सँ हो ऊपर
योगी-जन हित बिन्दु अनूप॥

[१२]

साङ्गद वाहिनीक रहइत
आ' रामक प्रिय करिगति अभिराम,
आरण्यक - पिक - सेव्य–सुकण्ठ,
सदा मृग - मद सँ कलित ललाम ।
सौम्य सतारक नेत्र युक्त साञ्जना--
पूत शुभ-लछन निवास,
गिरि-नितम्बिनी किष्किन्धा सन
कहाँ नुकैली हरि उल्लास ।

[१३]

रागहीन रहितौहुँ राग सँ—
चर्चित, चित-मोहिनी गुनीक,
षड्जविकृति सँ रहित तदपि
पद पौने षड्ज-प्रभृति जननीक ।
सद्वंशक सन्तान, तान सँ
जित – परभृत – वंशक सन्तान,
अज्ञाताधर भावों—ज्ञाताधरसुख
ओ कहँ मुरलि समान ।।

[१४]

कदली सघन जघन, नव पल्लव—
पद, पृथु विल्व अनार उरोज,
पाकल–विम्व अधर, तिल–सुम—
नासिका, गुलाब कपोल न ओज।
बल्ली–छवि, मल्लिका हास,
चम्पा द्युति, सफ़ल, कुसुमधृतहार,
राजित मौलिश्रीक वाटिका
कहाँ हमर प्राणक आधार ।।

[१५]

पद्मानन - सौरभ - समलङ्कृत,
मीननयन, भुजमृदुल मृणाल,
सुधा - समान - सरस - जीवन,
कौमुद-कोरक-कर-कलित रसाल ।
बाल-मराल-गमन, त्रिवली—
सोपान, चिकुर-शैवाल विशेष,
कम्बु-कण्ठ-शोभित पुष्करिणी,
कहाँ हमर, के कहत उदेश ॥

[१६]

सरसा, सालङ्काराकृति,—
सार्थक-कवि-कृति-गुण-गुम्फितरूप,
पदन्यास - विन्यासे - प्रशंसित,
सद्वृत्तिक साक्षात् सरूप ।
सर्जन - रत-कवि - रचित—
सुवर्ण-खचित आर्यादिक वन्दित नाम,
भावमयी ध्वनि - मोहित—
सहृदय-हृदया कत कविता अभिराम ।

[१७]

कण्ठ-कम्बु, श्रद्धाम्बु, पाणि-पद—
अम्बुज, जनिके अक्षत भाव,
कान्ति-दीप, मुख-सुरभि-धूप,
नूपुर घंटी, कच चमर प्रभाव ।
पाकल बिम्ब समान अधर केर
मधु, न वेद धरि जनिका जान,
से नवेद पूजोपकरण ओ
कहाँ हमर शुचिता-उद्यान ॥

[१८]

स्वयं भानुतनया, जनिका—
वाणी मे मधुमय बाणीवास,
मणिकर्णिका युगल समलङ्कृत—
श्रुतियुग श्रुति सन जे अवभास।
शिरवेणी, माधव निकटहिँ,
त्रिवलीक दृश्य तीनू जत धार
बढ़लि तीर्थराजहुँ सँ राधा
कतऽ गेली प्राणक आधार॥

[१९]

घन कुन्तला, रसार्द्र भूतला—
हलधर – बन्धुक प्राणसमान,
चपला – द्युति – संकुला—
मुदितगोकुला, गमनजित हंसक मान।
इन्द्रचाप-भृकुटी, कन्दर्प-कलाक—
कुटी, वक – उज्ज्वल – हार,
बरसा सँ बढ़ि बरसाना—
सुन्दरी कहाँ प्राणक आधार॥

[२०]

चारु – चन्द्रिका – चीरेँ चर्चित,
चराचरक चितकेँ चोरबैत,
हुलसित हंस-गमन सँ हिय हरि,
खञ्जन–नयनहुँ केँ उड़बैत।
समलङ्कृत शृङ्गार–हार सँ
हस्त सचित्र कला देखबैत,
शरदहुँ सँ सुन्दरि अकलङ्क—
मयङ्कमुखिक छबि छी न देखैत।

[२१]

भानु-परम - प्रिय, चित्रभानु
तोषितजन-धृत - हैमालङ्कार,
अवनत - शालिग्रामा, पृथुक—
ललामा, मार्ग जनिक सुखसार।
शीतलप्रकृति, तिरस्कृत—
कमलाऽऽकृति, ऊनौक वत्सलादेवि,
हेमन्तहुँ सँ बढ़लि, जनिक—
मुख कर पद पद्म जिबी हम सेबि॥

[२२]

पातक - पुञ्ज - पहाड़ पाबि,
प्रतिमा लखि पङ्कज पतित जनीक
तिलक-सुमन-हासा, कुन्दोज्ज्वल—
हासा शिशिरहुँ सँ जे नीक।
कारण ? उष्ण शिशिर मे—
गर्मी मे शीतल रहइत छथि वेस,
कतै हमर से अमर-प्रेम बाली—
राधा छथि तजि आवेस॥

[२३]

कण्ठहिँ कोकिल-कुलक काकली,
अधरहिँ जनिक व्यक्त मधु-धार,
धव तथापि माधव सन सेवक,
नव दल पुष्प जनिक शृङ्गार।
आलिस्वराञ्चित, पूजित रतिपति
प्रिय पत्रक करइत निर्माण,
बढ़लि बसन्तहुँ सँ से सन्तहुँ
सेबित कहाँ हमर छथि प्राण॥

[२४]

अवितहिँ जनिक, व्यजन होँकै
जनता जहिँ तहिँ भय कम्पितगात,
तानि छत्र सस्वेद जनिक हित,
चलै बुझैत कहाँ की बात।
पाकल आम जामु बाटी भरि
राखै रम्य प्रकृति उपहार,
शीतलताक लता ग्रीष्महुँ सँ
बढ़लि कहाँ छथि परम उदार॥

[२५]

केहेन अदृष्टि, दृष्टिगत हो नहि
प्रियतमाक सेबित जे देश,
ककरा पुछब, कहत के, ऐ'—
हतभाग्य-व्यक्तिकेँ प्रिया उद्देश।
तागति सठल, जाहि सँ पदगति-
शिथिल, आब चललो नहि जाय,
की कपार मे लिखि अपार दुख,
बना देलक अछि विधि निरुपाय॥

[२६ [

हो दिग्भ्रम, संश्लथ-पद, परिचित-
पथ नहि भेटै, चित् उद्भ्रान्त,
ज्ञात न हो अज्ञात कोन-
माया मे पड़ि कऽ भेलहुँ अशान्त।
अहिना सोच करैत नीप-तरु-
तर तरुणाब्जनयन पुनि जाय,
थाकल कल न पबैत बैसि कऽ
पद्मासन मे जनु असहाय॥

[२७]

राधा-चिन्तन मे तन मन सुधि
बिसरि चिरन्तन हबोढकार-
कनइत बहुतो काल, कालहुँक
महाकाल बनला सविकार।
पुनि पाटल-युग-नयन कपाटक
पाट बन्द कऽ, हिय- मठ केर,
मध्य किशोरीजीक मूर्ति-
देखइत तन्द्रा मे पड़ि कऽ भेर॥

[२८]

तकर बाद अवलोकल तीनू-
लोक-ललाम ध्यान मे लीन,
अगणित राधा तथा अपन-
प्रतिमा अनन्त, वय सभक नवीन।
पुनि त्रिभुवन-सौन्दर्यसार आ'
ब्रह्मानन्द-घनक आसार,
तरल - तरङ्ग - सुधा - सागर
कमलाकर लुब्ध मधुप गुञ्जार॥

[२९]

देखल तही द्वीप मे सुरभित
तथा अपरिमित पुञ्जक पुञ्ज,
पारिजात मन्दार वकुल कुल,
कूजित कोकिल कुसुमित कुञ्ज।
जतै रत्न मणि खजित रम्य
चितमोहक विरचित अद्भुत रूप,
क्षीर हीर सम विविध प्रकारक
शय्यें समलङ्कृत अपरूप॥

[३०]

एक पलङ्ग, जाहि पर बैसलि
कोटि रमा सँ बढ़ि रमणीय
सौदामिनी-सहस्र – समुज्ज्वल-
प्रभा-समुद्भासित कमनीय।
लाले लाल विशाल नयन-युत
अरुणाकृति करुणा-घन लम्ब,
रक्त दुकूल फूल माला
चन्दन चर्चित त्रिभुवन अवलम्ब॥

[३१]

सब श्रृङ्गारँ शोभित सस्मित—
मुखकमला विमलाकृतिवेष,
प्रस्फुट – पीत – पयोधर सँ
जितने पङ्कज-अभिमान विशेष।
पाशाङ्कुश अभीष्ट वरधारिणि
मनहारिणि तारिणि सब केर,
नव यौवना कुमारी मणिमय—
भूषण जनिका ढेरक ढेर॥

[३२]

कनक – कान्त – कङ्कण – किरीट—
केयूर-कलित, ह्रीँकार जपैत—
विहग-वृन्द-वन्दित, अनङ्ग—
कुसुमादिक सेवा ग्रहण करैत।
यन्त्रराज उपरिस्थित—
षट्कोणक मध्यस्थ अनादि अनन्त,
सुरकन्या धन्या हृल्लेखा—
दिक सँ सेवित लय पर्यन्त॥

[३३]

सहस सहस सुकुमारि कुमारि—
सखी सब सँ सेवित सदिकाल,
जनिक वेष भूषा सरूप—
हुनक्के सन सौम्य नितान्त रसाल।
सब तनिके मुख नयनक सम्मुख
रूखि देखैत जोड़ि युग हाथ,
सेवा मे लागल रहि—
भुवनेश्वरी नाम जपितैहँ सनाथ

[३४]

सहस-नयन-भुज-मुखयुत तैं—
देविक लग बनिता बनि सुरबृन्द,
ऋषि मुनि सहित नाम जपि जपि से
पिवइछ भक्तिक अमृत अमन्द।
जनिक पादपङ्कज-नख-दर्पण मे
विम्बित ब्रह्माण्ड अखण्ड,
स्मृति कऽ भुवनेश्वरी जानि,
आ' अपना एक तनिक बुझि खण्ड॥

[३५]

गद्गद कण्ठ भावि-उत्तम-फल—
हित सोत्कण्ठ दुनू कर जोड़ि
श्याम-सरोरुहगात नोर वहवैत
दण्डवत तनकें ओड़ि।
निराकार तैयो उपाधि वश
विवश भेल श्रीनन्द किशोर,
स्तुति प्रारम्भ कैल सपने मे
अपने शक्तिक भाव विभोर॥

[३६]

हे अम्ब ! विश्वक अहीँ अवलम्ब एक,

धऽ रूप दुर्लभ अनूप तथा अनेक।

रक्षान्त सर्जन करैक निमित्त दक्षा

लीला करी गतिजितेन्द्र करीन्द्रकक्षा॥

[३७]

कल्पान्त- वारिनिधिमध्यविशालशेष-

शय्या सुपुप्त हरि लुप्त छलै अशेष।

तोरे कृपाक परिपाक जगन्निवास

चैतन्य पाबि कटिपावित पीतवास॥

[३८]

मारि सकैटभ मधु, मधुसूदन—

नामेँ ख्यात भेलाह,

कैटभारि संज्ञोसँ कीर्तित

कीर्ति पाबि सकलाह।

एवं विपत्ति - पङ्क सँ-

पङ्कज जन्मा पाओल त्राण,

तथा तही दुहुकेर मेद सँ

मेदिनीक निर्माण॥

[३९]

पाबि विधिक वरदान महिष—

दानव जिति तीनू लोक

हरि हरि हर ब्रह्मेन्द्र प्रभृति केर

सत्ता ओ आलोक।

सन्तत साधु सन्त केँ छल बल-

सँ छल खल सतबैत,

जग अवाक आबाक मध्यगत

छल वट जकाँ तबैत॥

[४०]

रण मे हारि सकल अशरण सुर
तोरे कैल गोहारि,
दया-दृष्टि सँ सदय-हृदय-
तोंही तत्काल निहारि।
आविर्भूत अभूतपूर्व—
लऽ शक्ति भेलिह जगदम्ब!
तथा मारि सुकुमारि! महिष कें
देलह सबहिं अवलम्ब॥

[४१]

रक्तवीज कैर पीबि रक्त,
कैलह तोंहीं निर्बीज,
चण्डमुण्डहुँक मुण्ड काटि
रखलह संस्कृति केर बीज।
कैलह भस्माकार धूम्र-
लोचनकें कऽ हुङ्कार,
तोहीं शुम्भ - निशुम्भ-मर्दिनी
रूप भेली साकार॥

[४२]

कनकन मे हे तप्त - कनक—
कमनीय कान्ति भुवनेशि!
व्यापित अहीं, पितर वर्गक हित
अहीं स्वधा घनकेशि!
की स्वाहार देवगण पबितथि,
स्वाहा रटि तुअ नाम,
जौं सुकुण्डले! होम-कुण्ड मे
पड़ै न हव्य ललाम॥

[४३]

निधन यथार्थ निधन भऽ जैतथि
पावि सृष्टि केर भार,
जौं दितिअनि नहि वाणी गृहिणी
निज वाणी साकार।
जौं न रमा - कर - मानिक दऽ
करितहुँ विष्णुक सत्कार
सुप्त तदपि विचमानिक भऽ
लऽ सकितथि रक्षाभार ?

[४४]

उमत असम्मत चिता-भस्म सँ—
लिप्त जनिक सब आङ,
गर लऽ गरल भूतगनसेव्य—
नगन फकइत टा भाङ।
राखि ग्रीव भुज गहना भुजग
जटा मे नचइत गाङ,
शिव न कहबितथि, जौं तुअ अंश
उमाक न छुबितथि माङ॥

[४५]

अहँक प्रभा सँ युक्त प्रभाकर
देथि प्रभातक रूप,
विधु विधुऐले दृष्ट न जौँ
दितिअनि न कान्ति अपरूप।
अनल न गनल जेताह, दाहिका—
शक्ति लिअनि जौँ छीनि,
पवन पङ्गु विनु अहाँ, कही हम
खिँचि कऽ रेखा तीनि॥

[४६]

धरित्रीक धारण करैक धरि
शक्ति अहीँ केर देल,
जलमे शीतलता की जलज—
सुतक बूतेँ अछि भेल।
ई विस्तार गगन, तारक गन,
गनब जकर गप मात्र,
विनु तोहर विधि हरिहर की
कऽ सकितथि धऽ धऽ गात्र॥

[४७]

चर वा अचर, अहीँक रहैत—
कहावै कार्यक योग,
तुअ बल हँटितहिँ अवल-जीव केँ
छन मे होइछ अभोग।
तेँ असमर्थ समर्थ कहै गप—
छी हम शक्ति विहीन,
कहाँ कहै क्यो विष्णुहीन,
शिवहीन विधातृविहीन॥

[४८]

ततवे नहि, हो क्यो नारी,
वा करौ कोनो व्यवसाय,
धर्म कर्मरत रहौ, करौ वा
पातक तक चित लाय।
सबमे सदिखन प्रतिविम्बित हम
तोरे देखि प्रकाश,
अञ्जलिबद्ध प्रणाम करी बुझि
सबतरि शक्तिक बास॥

[४९]

एकमात्र द्विजनाथ भाल सँ
सटा, नियम कें राखि,
काटि काटि प्रिय-पीर—
जनौक विकास केर रस चाखि।
महादेव वनबैत कान्त-रुचि—
वश सब काज करैत,
ब्राह्म-नीक तुअ प्रकृति देखि,
हम छी ब्राह्मणी कहैत॥

[५०]

जन-कर ग्रहण करैत, कृपा सँ
वसुधा - पालन - लीन,
दुष्ट - दैत - वध हेतु कुमारहुँ
साहस दैत नवीन।
सेनापति वनाय युद्धस्थल
पठबी ममताहीन,
माथ किरीट-सनाथ, देखि
क्षत्रिया बुझैछ प्रवीण॥

[५१]

गो-स्वामिनी, तेजि मधुसूदन
मणि -मन्दिर कऽ वास,
हाटक रूप देखाय सकल--
गाहकक छोड़ा आबास।
पद पद्मे पर रतन कोष मे
अतुले कऽ व्यापार,
क्षेत्रवती तों बढ़लि वैश्य--
पत्नी सँ कह संसार॥

[५२]

करइत प्राप्त नवेद, वेद,
पाठक ध्वनि सुनितहिं कान,
पुलकित पानि बढ़ाय कही-
की काज करू मतिमान ?
जानी वर्ण न तीन वर्ण केर
राखी सदिखन ध्यान,
हे द्विजराजमुखी शूद्री महँ
तुअ आभा अम्लान ॥

[५३]

नभ-पनिघट मे डुबा नखत घट
भरि भरि होइतहिं भोर,
बेली बौआसिनिकेँ दी--
कोकिल - कण्ठी कऽ शोर ।
पंखा पवन हौंकि, रवि-रिठ्ठी-
मे अम्बर सब केर,
तों खवासिनी भऽ खबासिनी
खिचि शुचि करह न देर ॥

[५४]

तों अजपा अज पालि चरा
अचराक विनो जगदम्ब !
सृजन कराबह तकरा सँ
बनि चरबहिनी अवलम्ब ।
किन्तु तकर तनया-तन-सङ्कक
कुत्सित भाव विचारि
घातक भर्वाहि बना बलि लैंछह
करुणा - हाट उसारि ।

[५५]

करा कमासुत रजोमूर्ति
कमतिब्रे खेत आबाद,
कृपा-कानरक जलेँ कृष्ण
जन सँ सिचाय साह्लाद।
सफल रहौ असफल वा तैं' पर,
कऽ कनिञो न विचार-
उपटावह हर राखि, केहेन
तों गिरहतिनी अविचार

[५६]

राखि सदा विधि हरि हर चाकर
सृष्टि चाक चलबैत,
आ' उद्दण्ड-पिण्ड हित अप्पन
दण्ड नियत घुमबैत।
निरभिलाख रहि, कऽ चौरासी—
लाख घटक निर्माण,
आवागमनक आबा मे दी,
एहेन कुम्हैनि न आन॥

[५७]

आगम-निगम-मूर्ति तोँ कौखन
अगम-जलधि तट जाय,
युग सँ राखल खल-संहारक
फेकह जाल घुमाय।
कहियो राघव माछ काछु पुनि
कहियो लैह बभाय,
गोंढ़ि निचिन्त केहेन गोढ़नी तों
लै' छह सबहिं रिझाय॥

[५८]

भव भरि मे लखि भक्ति-विभव
जकरे हिय-कोषक बीच,
ध्यान न ज्ञानी अज्ञानी हो
रहौ ऊँच वा नीच
बन्धक हेतु हरक हित तकरे
मन बन्धक मे राखि,
तेहन महाजनि हरण करह सब
भाव सूद रस चाखि॥

[५९]

विश्वक क्यो शिशु सद अथवा बद,
कऽ नहि तकर विचार,
हीर-समुज्ज्वल-क्षीर-भरल-घट—
युग तों करुणाधार।
बिना दाम सब हेतु सदा—
महिमामयि ! कऽ तैयार,
बाँटह टहलि अदृश्य स्वयं
के एहेन गोपालक दार॥

[६०]

जोगा नागबल्लीक वलय
कुवलयनयनी ! सदिकाल,
पानक पात्र राखि लग, लगले—
खिलिओ लगा रसाल।
भक्ति दाम टा पाबि रक्त—
अधरहुँकेँ छह वनबैत,
घुमि दिन रैनि बरैनि एहेन हम
छी नहि कतउ देखैत॥

[६१]

विषय-वह्नि सँ तप्त - कोटि—
ब्रह्माण्ड - भाण्ड मे देवि !
तत्कृत कर्मक उष्ण - बालु दऽ
भूत - अन्न केँ टेवि।
कानुनि बनि तोँ भूजि रहल छह
चढ़ा अपन कंसार,
दृष्टि न दै' छह भार-भार क्यो
अथवा दियौ अभार ॥

[६२]

गगनाङ्गना केर अङ्गना मे
उषा-नहरनी आनि,
काटि चान नख तोँ किरणावलि
मे शीतल दऽ पानि ।
घोरि सिनूरी आरत, प्राची
पदमे छह लगबैत,
अद्भुत नौआइनि समान
सबतरि सम्मान पबैत ॥

[६३]

हर हरीश दिकपालो सविधि
सदा नवनव बनबैत.
पति निचिन्त निज लूरिक सम्पति
सँ गिरहस्थ डेबैत ।
लगा पसार अनन्त-जीव
भाथी सदिखन चलबैत
कुलहरि कते बनाय-
लोहारिनि केर छह स्वाङ्ग धरैत ॥

[६४]

देव पितर आराधन हेतुक
सुमन लोक केँ दैत,
वैभव-जन्य विलासी-मानिक
हारक यत्न करैत।
वनमालिक पुकार सुनि तैँ ठाँ
सब तजि शीघ्र अबैत,
देखि अहाँ केँ मणि मालिनि!
मालिनि छी अम्ब! बुझैत॥

[६५]

स्वयं बैसि परदे मे, सन्ध्या-
होइतहिँ खोलि दोकान,
नखत-बतासा नील थार मे
सजा राखि अम्लान।
जानि न कोनगाहकक हाथेँ
बेचह होइतहिँ भोर,
अनुपम तों मोदिआनि, कला लखि
के नहि भक्ति विभोर

[६६]

नाक विभूषित. श्रुति समलङ्कृत,
अहिंक कृपेँ जगदम्ब!
बाजू कतउ; सूति रहबो वा
पाबि अहिंक अवलम्ब।
बल या' धरि तुअ अनुकम्पा,
आ' हार अहीं छी दैत,
देखि सुनारी-वृत्ति-
सोनारिनि छी, हम देवि! बुझैत॥

[६७]

गढ़ि गढ़ि काली तारा छिन्ना–
वगला प्रभृतिक अम्ब !
प्रतिमा ललितकला अप्रतिमा
भक्त केर अवलम्ब।
धर्म कर्म केर श्रद्धा भक्ति
सतत जगमे बढ़बैत,
छोलकढ़नी बनि तोहीं जननी !
छह भूमध्य अबैत ॥

[६८]

साम सहित मूसल कर कौखन
भक्तक प्रिय हित अम्ब
जाइ कुटी सवधान,
देखी तें कुटनी मे प्रतिविम्ब
कहुँ लगनीक स्वरें गबइत तों
पीसह जाँत चलाय
जौं कुटनी पिसनी तों तें नहि
भूखल विश्वनिकाय ॥

[६९]

आइ धोआइ विना देने–
जगती मे धोबि न एक,
साफ करै पट साफ साफ कहि
दितहुँ दबाब अनेक।
स्तुति करितैहँ अकैतव तव,
केहनो आत्मा हो मैल,
तों रजकी रज की किछु छोड़ह,
बनबह निर्मल चैल ॥

[७०]

जानय तोर अजा ! नय नहि क्यो,
विनु पौनहि बहतौन,
भूत - अभूतपूर्व - वृष- गण-
लोचन मे रहि तों मौन ।
पट्टी कसि कऽ बान्हि अलक्षित
कल्हु मे नित्य घुमाय,
तेलिनि जकाँ सिनेह चुआवह
विषयक गोट पेराय ॥

[७१]

जीव न जानय मुदा अहाँ
जीवन भरि चसक लगाय,
ककरो अधर चसक भरि विषयक
आसव देवि ! पिआय ।
माय कहाय कुमाय हाय !
करबी बोभत्सो काज,
एहेन कला न कलालिनि दोसरि
जानय करितहुँ व्याज ॥

[७२]

तों डाइनि डाइनि योगिनियुत
जगा जगा समसान,
जादू अपन चलाबह, जैंसँ
मत्त महेश प्रमाण- ।
छाउर लेपि नग्न भऽ नाचथि,
मरै विधिक सन्तान,
शयन करथि सापक शय्या पर
श्रीशार्ङ्गी भगवान ॥

[७३]

शव-आसन पर ठाढ़ि नगन तों पहिरि मुण्ड केर माल,
घट घट रक्त पिबैत, मद्य सँ खनहिं नयन कऽ लाल।
मारि दनुज मुहँ मेलि, उगिलि किछु रसना लपलपबैत,
असित बरनि असिहाथ अघोरिनि छह सबकेँ कपबैत॥

[७४]

बन्द सहस फाटक मे रहितहुँ लागल ताला लाख,
पद पद पर पटु पैघक पहरा जतै समीरहुँ धाख।
कोना आबि तों कोन वाट धऽ क्यो नहि जानि सकैछ,
प्राणिक प्राण-रत्न चोरबै छह, चोरनी सकल छकैछ॥

[७५]

रहितहुँ अस्पृश – पानि सनातन पर रखने विश्वास,
जाइ न मठ मन्दिर तथापि तकरे रत्ताक हुलास।
सब सँ बाहर तदपि वेरि-पड़ने विनु अहाँ न काज,
प्रतिनिधि वना अंसजा केँ तों राखह आर्यक लाज॥

[७६]

चन्द्र-धोबि सँ धोआ धोआ अम्बर सब केर सजाय,
विविध रङ्गमे रङि रङि दै'छह नितदिन खूब सुखाय।
पहिरि पुरानो प्रकृति नवीने सदा होइत छथि भान,
तोहर सन रङरेजिनि दोसर नहि भेटैत अछि आन॥

[७७]

पृथुक भक्त ऐंठिक विचार चित मे कनिञो न करैत,
पतित वृन्दहुँक पातक केहनो विनु कहनहिं समटैत।
भिन्न कैल वंशक पुनि भिन्ने-भिन्न कला देखबैत,
डोमिनि जकाँ पोसि सूगर-छी महि उद्धार करैत॥

[७८]

अस्थि चर्म मुण्डक न घृणा किछु मांसक हेतु लोभैल,
देवक पद-त्राण हित तकइत सिद्ध चरम अगुतैल।
बिनु अहाँक ककरो न जन्म, छठिहार सभक मनवैत,
अहीं चमैनि चमरटोलिक-छी चमर डोलाय कहैत ॥

[७९]

खड़रि खड़रि खरतर-मारुत-खड़रा सँ भरि संसार,
कलुषित कोठा कुटिक बूझि-कूड़ा कुरकुट निःसार।
पछबा मुहेँ पजारि आगि सँ डाहि, भरल घन घैल—
उझिलि साफ कऽ मेहतरनी सम राखी कतउ न मैल ॥

[८०]

तों श्रुति वाली, नाकहुँ के—नथिक्वे नथने सदिकाल,
ताम्रचूड़ प्रिय शिशुक साथ तारक रुचि राखि बेहाल।
कोनो रसो न तोरा प्रिय, तारी टा रस क अधीन,
यवनी बनी अहीं अवनी मे, बूझै भक्त प्रवीण ॥

[८१]

धुनि धुनि वाङ्मयि ! वाङ् मृदु अपने धुनिआइनिक समान,
चला अचर चर खे निरता नव सूत्रक कऽ निर्माण।
बिनु बुननहि अम्बर वरदायिनि ! देलह लगाय अमार,
एहेन जोलहिनी क्यो न, दिगम्बर तदपि महेश उदार ॥

[८२]

सप्रपञ्च ब्रह्माण्ड-मञ्च चढ़ि औरो बना सरूप,
नव नव अभिनय बोद्धा-नयन लोभावक करह अनूप।
तन्त्रमयी ! परमस्वतन्त्र तों इच्छा जे जैं काल,
करह रहस्यमयी ! तेहने हो-काज तथा से ताल ॥

[८३]

आंनक गप आनक की चर्चा विधि हरि हरो महान,
कोटिक कोटि तोर पद-पद्मक करथि मधुर-रस पान।
तदपि कनेक चूक होइतहिं वा खेल करक हित अम्ब,
मायाविनी बनलि तों वन वन घुमबह विना विलम्ब॥

[८४]

वेद - संहिता - गायक धाता—दुहिता हेतु सकाम,
स्वयं सदाशिव मोहिनीक छवि देखि मत्त मति वाम।
कच्छप मीन वराह आदि केर रूप विष्णु बनलाह,
आ' अभिराम राम वपु धऽ सीताक हेतु कनलाह॥

[८५]

ई सबटा हे भुवन-सुन्दरी! लीला केवल तोर,
दर सन होइतहुँ दरशन पावि बहै आनन्दक नोर।
करुणा करु करुणामयि! आबहुँ भुतिआयल शिशु जानि,
तुअ माया सँ निर्जित भऽ लज्जित छी हम, से मानि॥

[८६]

प्रिया राधिका कोन देश मे से कहु शीघ्र उदेश,
लागल अछि टकटकी, आब नहि नाटक करिअ विशेष।
देखल वृन्दावनक सकल पथ खल दैवक वश पाबि,
चञ्चल चित हम बुझी अपरिचित शक्तिहीन मुँह बाबि॥

[८७]

की माया निर्माय माय! तों कऽ रहली किछु खेल,
तुअ पद-पङ्कज भ्रमर हमर उद्विग्न चित्त जै' लेल।
वा ग्रह केर उत्पात, भूत वा विग्रह पर अछि ऐल,
जन्मान्तरक शाप वा डाइनि मन्त्रे कोनो चलैल॥

[८८]

की सेवाक चूक सँ एखन-अचूक दण्ड तों देवि,
दऽ रहली अछि, हली-अनुज तँ रहै सतत तोहि सेबि।
मुदा उदास पुत्र-मुख सम्मुख होइतहिं जननिक आँखि,
मघवा-चालित मघ-वारिद हो तखन रही हम झाँखि॥

[८९]

प्राणाधिका राधिका विनु प्राणान्त करब हम आब,
मीन - निकेतन - वाणेँ जर्जर-तन, हृत्तल मे घाव।
कोटि भानु द्युतिवाली तों वृषभानु-सुता दे ताकि,
रहल जाय नहि असह विरह-ज्वालेँ रहलहुँ अछि पाकि ?

[९०]

कहाँ राधा प्यारी परम-सुकुमारी गुणलता-
गेली हा ! की भेली मथि मन नवेली रतिरता।
अये तारा ! तारा मम पुनिमतारापति मुखो
दुखी देखै टा लै, कतय रति-लीलाक विदुषी॥

[९१]

हठी नैना तुल्ये कनइत एना मध्य सपने,
बिहारी संहारी खल - दलक जैं हाथ अपने।
बढ़ौले, की पौले परश वश क्यो माथ परमे
दयार्द्री भऽ फेरै अभयकर आर्द्रा घन समे॥

[९२]

चौंकि चपल-चित-नाथ, पल उठाय देखितहिं सलज।
जोड़ि युगल जैं हाथ, भऽ सनाथ लगला कहय॥

[९३]

तावत परम-दुलारु शिशुवत्त हरिकेँ कऽ निज कोर,
जनिकर तन-घन दरश छनो भरि हो तैँ सुर मुनि मोर।
जप तप संयम नियम निरत, से कादम्बिनी कृपाक,
लयली लगले कहय कृष्ण केर करइत अन्त त्रपाक॥

—:०—

पाँ

च

म

स

र्ग

[१]

वत्स कृष्ण ! श्रीवत्स-विभूषित्त, वत्स-दमन, श्रीनाथ,
तुअ पद-रज व्रजभूमि चूमि कऽ अछि बनि गेल सनाथ।
महिमा लखि महिमण्डल की, मोहित अखण्ड ब्रह्माण्ड,
सुर-मुनि मुनि न सकथि दृग् देखक हित तव नव नव काण्ड॥

[२ [

भूमि-भार उतरल, भक्तक दल—तरत आब से जानि,
ज्ञान-निरत-जन अविरत सपुलक बहबय हर्षक पानि।
दनुज-कटक टकटकी लगा भऽ त्रस्त देखै सदि काल,
उत्पथ गामिक हेतु कोन—पथ सँ आओत हरिकाल॥

[३]

मम अभिनय उन्नयन हेतु, नय-निपुण तोर सन पात्र—
केर· कला-कौशल देखैक हित नाचय नयनक पात्र।
माया-सहित तोर रत्ता हित सहितहुँ विविध कलेस,
अपनहुँ अपन देखाय रहल छी कते प्रकारक वेष॥

[४]

हे योगक आचार्य ! तोर—सहयोगक हित हम आवि,
कऽ आकर्षण संकर्षण केर गर्भहिँ सँ किछु भावि।
गोकुलस्थ-रोहिणी उदरमे कैल सुरक्षित धीर !
गर्भपात देवकी केर. सुनितहिँ विस्मित कंस अधीर॥

[५]

कारागृह-सोइरी मे शौरी! तुअ रक्षाक निमित्त,
ज्ञान हरू पहरूक कोना, से पहिनहिँ सोचि सुचित्त।
मायिक-बल सँ मोहि सबहिँ तुअ मायिक आ' जनकौक,
मति थिर कऽ कहबौक अहीँ सँ—'मित्र ब्रजहि मे छौक' ॥

[६]

पहुँचाबह तैं' ठाम, जातमात्रे—अहाँक सुनि बात,
सकल विलक्षण-लक्षण सँ कृष्णावतार कऽ ज्ञात।
आ' मायावश बिसरि विषय से पुत्रत्याग दुख पावि,
कनइत, तथा कतहु रहि बाँचथु से आशाबल भावि॥

[७]

हृदय वज्र कऽ पिता अहाँ केँ चट गोकुल पहुँचौल,
उमड़लि यमुना मरलि नदी सम भय सँ पथ दरसौल।
हमरे अंशजात महरिक कन्या सँ हरि! वसुदेव
बदलि अहाँ केँ गेला यशोदा बुझल न माया टेब॥

[८]

एम्हर देवकिक आठम गर्भक अर्भक घातक मोर,
जन्म लितहिँ मारब, तेँ—ताकय कंस जन्म छन तोर।
कन्या देखि अवाक, फूसि बुझि—देव वाक खिसिऐल,
हुनके पाथर पर पटकक हित मन्दबुद्धि अगुतैल॥

[९]

ओ छलि ओकरा, उछलि हाथ सँ कहइत बात कठोर,
रे खल! जनमि चुकल तुअ घातक सकल जनक चितचोर।
मुदित उदित-कोटिक रवि-कान्ति कलित उड़ि गेली अकाश,
आ' जितविषय भक्त सँ पूजित—कैल विन्ध्यगिरि वास॥

[१०]

ताहि दिवस सँ मृत्युविवश ओ करइछ पूर्ण सङ्कोर,
दुष्ट युक्ति सँ कऽ नियुक्ति बहुतो दनुजक खल चोर।
बाल घात करबाय रहल अछि संस्कृति-घातक कंस,
भरिसक रहने एना, न व्रज भरि बचत कोनो टा बंश॥

[११]

यद्यपि ओकर कतेको दनुजक, तुअ कर कैल निपात,
तहिना बल देखाय बलरामो हरथि ओकर उत्पात।
तदपि आब अपना प्रभाव कें ओर देखाउ विशेष,
अपन पिता माता मातामह-केर शीघ्र हरु क्लेश॥

[१२]

तथा एतै रहि सक भरि यत्नहुँ कंसक हैत न नाश,
अपनहिं अहाँ जनै छी की नहि ई सब जगन्निवास !
केशव ! तैयो उपदेशब थिक, बुझि आयल छी आज,
सुत सुयोग्य रहितहुँ गुरुजन चित शङ्कित या' हो काज॥

[१३]

शेष-विहारी ! एखन एहि अवतारक खेल अशेष,
पड़ले अछि, पड़ले रहवे तँ परले हैत रमेश !
हमरे प्रेरित क्रूर कंस तें-झट पठाय अक्रूर,
गोपिक हृदय थुरा मथुरा-लऽ जैत अहाँ कें शूर॥

[१४]

मुदा ताहि मे बाधा-श्रीराधा करती यदुनाथ !
जनिक वेजोड़ पिरीत-रींति सँ छी अपनौहँ सनाथ।
जे सदिकाल अभिन्न अहाँ सँ देहमात्र सँ भिन्न,
विना अहाँक एको छन जनिका लोचनमे नहि निन्न॥

[१५]

ब्रह्मा स्वयं अही सँ जनिकर पाणिग्रहण करौल,
आ' भाण्डीरक उपवनमे स्तुति दुहु प्राणी केर गौल।
श्रीदामाक शाप सँ मुरहर! तोहर पाबि वियोग,
व्याकुल गोकुलमे करती जे सै वर्षक दुख भोग॥

[१६]

अहँक विरह सपनो मे जनिका रहै देअय नहि थीर,
श्री हरि रटि जे श्रीनिकुञ्ज मे मूर्च्छित छलीह धीर!
अछि रहैत रायाण-गेहमे जनिकर छाया-देह
आत्मा किन्तु अहींक मिलित युगयुग केर पाबि सिनेह॥

[१७]

कते सहस्र अहींक सख्य-भावक अजस्र अभिलाख
करइत जनिका सङ्ग-गोपबालिका तेजि कऽ धाख।
कुल गोलोक छोड़ि गोकुल-अछि ऐल अहीं हित देव,
अर्थ धर्म वा काम मोक्ष जकरा किछु छैक न लेब॥

[१८]

तुअ-मुख-विधु-पीयूष-पान हित चाहय बनलि चकोर,
भाव तेहन, क्षणिको अभाव ने चाखै स्मृतिक अङोर।
जे भऽ भक्तिविभोर तोर, बुझि रहलि अपर सब भोर,
घनश्याम-वन देखि नचै अछि जकरे मानस मोर॥

[१९]

क्षणिक जनिक विरहेँ अहुँ सरि भऽ बिसरि सकल सुधि आज,
सात्विकभाव दबाब पाबि सात्विकभावक शिरताज।
भावी स्मरण करी की स्मरण न जकर विजय करबाक-
छी दऽ चुकल सकल-सुर-सेवित! नारदमुनि केँ वाक॥

[२०]

तेँ नेनपन तजि अपन, थिकहुँ के, की की गछि कऽ काज,
आयल छी से सोचविमोचन! सोचक थिक व्रजराज।
निर्विकार! अपनेक क्रिया ई लखि हिय हमर डरैछ,
एहि प्रकार विकारपूर्ण कृति साधारणो करैछ॥

[२१]

कीरति-रति, एकान्त-कान्त-सुखहुँक लालसा ललाम,
इच्छा वा अनामिका मध्यम-पोर उपर हो नाम।
लात वलात लगा ममताकेँ वासनाक मलि नाक,
पूर्ण करी सङ्कल्प, कल्प भरि छुवै न विघ्नक पाँक॥

[२२]

तेँ सवटा विचारि, पूरा कऽ चाड़ि, होउ तैयार,
यश-धन हेतु मोहवन्धन झट तोड़ू नन्दकुमार।
लता सफलता केर अहाँ सन तरु पर लतरत आवि,
तरत अनवरत भक्तमण्डलो गुण-गण-गाथा गबि॥

[२३]

राधा! राधा! रटइत रटना करु न आव यदुनाथ!
ई कातरता कात राखि, उन्नत-वनाउ मम माथ।
बौआ कृष्ण! अहाँ केँ हुनका-हिय बौआइत देखि,
सदय हृदय भऽ गेल हमर किछु आगुक काज परेखि॥

[२४]

आबि एतै अतएव असित-छवि! मार्ग प्रदर्शित कैल,
कहल सकल हे हलधर बान्धव! राखल किछु न नुकैल।
श्रीराधाक सतृष्ण-कृष्ण सुनि आज्ञा भुवनेशीक,
हाथ जोड़ि, शिर ओड़ि चरण पर कहल साश्रु पति श्रीक॥

] २५]

जननि ! योगि-जन नित जै' पद हित समाधिस्थ सदिकाल,
दरस-स्वाद-रस कहुना पाबथि ध्याने मध्य रसाल।
हमर आचरण कोन तेहेन, जैं सैह चरण ई तोर,
तपहुँ अगोचर दृष्टिक गोचर-भऽ मोहय मन मोर॥

[२६]

निश्छल-हृदय कहै छल बुधजन जगदम्बा छथि एक,
जे होइ छथि अवतरित तड़ितरुचि सुत-दुख देखि अनेक।
मुदा न मानय मानस कहियो पावि अलक्षित रूप,
अभिरामे ! तुअ कोरा मे हम प्रत्यय पौल अनूप॥

[२७]

पीबि अमृत अतृप्त जाहि-वचनामृत हित सुरवृन्द,
हिय-निधि मन्थन करथि भक्ति मन्थन-दण्डेँ सानन्द।
बाणी-सुधा-सु-धार एखन से मोर सुधार निमित्त;
हृत-पातक अप्रत्याहतगति बहि बना देल शुचि चित्त॥

[२८]

पाप-मान मलि रहल एखन अछि वर्तमान सोल्लास,
तीत-विषय पर मोर अतीत-विजय पौलक हो भास।
भावि प्रधावित भऽ उत्तम फल देत ! अम्ब ! हो ज्ञात,
जैं तुअ दर्शन पौल सुदर्शन-प्रियो एखन प्रख्यात॥

[२९]

तेँ अहाँक आज्ञाक अवज्ञा करब कोना हे माय !
स्वर्ग नरक सम नरक हेतु अनुशासन माइक विहाय।
हे अन्तर्यामिनी ! किन्तु यामिनी दिवस जे सङ्ग
रहि सामाजिक रीति-रहित पालय मम प्रीति अभङ्ग॥

[३०]

धैल तकर कर तजब कोना, सै वर्ष हेतु गतहर्ष,
आश न इन्द्रासन पवितहुँ हम पायब ई उत्कर्ष।
हेतु ? अदोषा योषा केर करी कथमपि नहि त्याग,
तेजि प्रेयसी राधा, अयशी-भऽ लगाउ की दाग॥

[३१]

तथा हमर सुनितैहँ गमन ओ विमन बनलि भऽ सन्न,
प्राण अन्त कऽ देती, विना-ऐनहुँ अन्तक तजि अन्न।
ताहि बताहि केर रोधक हम की करवैक उपाय,
शपथ हमर, पथ करु प्रशस्त हे माय ! गही हम पाय॥

[३२]

एवं अहिंक भरोस 'उपर मन्मथ–जय हेतु सरोष,
कैलहुँ प्रण, लीलाप्रणयिनि हे ! दऽ ताहू हित जोस।
पार उतारि प्रतिज्ञा-निधि सँ तारिणि ! कीर्ति बढ़ाउ,
सूझै किछु नहि भव-निधिमे दऽ ज्ञानक ज्योति अढ़ाउ॥

[३३]

और देल जैँ तते आत्मबल–संवल, जे हम पावि;
ललितादिक पिरीतिसँ वश भऽ रहि न जाइ मुहँ बावि।
एवं जकरे वत्सलताक–लताक थिकहुँ हम फूल,
पल भरि पल न खसाय रहै जे मम मुख सम्मुख तूल॥

[३४]

ताहि माय 'आ' पिता–यशोदा नन्दक हेतु क्षमाय,
अकर्मण्य वनि जाइ न ममता–लता मध्य लपटाय।
ई वृन्दावन, वंशीवट–गोवर्द्धन, गोधन केर
ध्यान असावधान कऽ यमुनातट लावै नहि फेर॥

[३५]

कहइत वनमाली राधिका-पुष्प-माली,
युग-नयन-मृणाली कें बना नोर-माली।
मुनि-मनक मराली, विश्वमे व्याप्ति बाली,
जनिक सुकृति काली आदि गावै कराली॥

[३६]

तनिके युग-पद-पद्म-पर वलियाचक अलि सदृश।
पड़ल क्षीर निधि सद्म रुद्धकण्ठ सोत्कण्ठ प्रभु॥

[३७]

हरिक दशा लखि विलखि तारिणी नोर धार झहराय,
किछु छन वात्सल्यक वारिधिसँ नहि सकली बहराय।
होइत सजग पुनि जगतमोहिनी विभुकें वक्ष लगाय,
चिबुक पकड़ि चुचुकारि कहै लगली ब्रह्माण्डक माय॥

[३८]

हे हरि! हेहरि माया मे पड़ि हरित-ज्ञान भऽ आज,
मिथ्या सम्बन्धक बन्धन मे व्यर्थ बद्ध व्रजराज।
रूप सच्चिदानन्द अपन चीन्ही नहि नन्दकिशोर!
त्रिभुवन-पिता! शापिता-राधा बुझितहुँ भावविभोर॥

[३९]

ओह! मोह नहि हँटत ओना, जकरा वश सीदित सृष्टि,
तें हम मन्त्रराज सँ दीक्षित-कऽ आध्यात्मिक दृष्टि-
दऽ रहलहुँ, जे पाबि, तेजि-आसक्ति, भक्ति मे लीन,
भऽ निर्भय झट होउ धोउ सब विकृति, विचार प्रवीण!

[४०]

जे ह्रींकार मन्त्र जपितहिँ भऽ निर्विकार जगदीश !
मन्मथ-मथन कऽ, राधाहुँक पैब न विरहक टीस।
तथा कथा की और, तोड़ि-भ्रमजाल विश्वकल्याण
करब मारि खल-दल दुख-दलदलसँ देहुँवकेँ त्राण॥

[४१]

करुणा-वरुणालया शेष वलया-भुवनेशिक बात,
सुनि, गुनि, हर्ष-नोर वर्षण--करइत रोमाञ्चित गात।
आ' पद्मासन-रत पद्मापति कऽ षट्चक्रक शुद्धि,
उन्मुख जननी-सम्मुख होइत--भेला जे देथि सुबुद्धि॥

[४२]

देखि अचञ्चल हरि केँ माता अञ्चल सँ शिर झाँपि,
दहिना श्रुति-पुट मे श्रुति-सेवित—मन्त्र, दया सँ काँपि।
दऽ कऽ कहइत भेली एकर जपितहिँ कामिनी अनन्त,
अन्त न पौती, चित रहते सच्चित्! अविकृत श्रीमन्त॥

[४३]

आब उचित श्रीराधा बोधब, माधव जा' श्रीकुञ्ज,
वाद तकर साह्लाद समय लखि रास करब सुखपुञ्ज।
हे विराट! हे योगिराट! कऽ तुष्ट गोपिका-वृन्द,
विकृतभाव लखि ताहि सभक मुरली मे गैब अमन्द॥

[४४]

हमर देल ई मन्त्र भक्ति सँ लज्जित होयत काम,
तथा सुन्दरी-संघ केर अपनहिँ पूरत मनकाम।
सकला रतिक कलाक प्रदर्शन करितहुँ चलित न हैब,
पुनि समाद पौने प्रमाद तजि मोहन! मधुपुर जैब॥

[४५]

विष्णु रूप मे अहाँ विधाता, आ' गौरीश महान,
कोनो समय अभिमान-विवश मुखिआ हम, हमहिं प्रधान।
बाजि छलहुँ झगड़ैत, तखन जे रूप देखाय घमण्ड—
दूर कैल, से आइ देखाओल पुनि हम अपन अखण्ड॥

[४६]

बाजि एहि प्रकार प्रभुकृत-अर्चना सँ अर्चिता,
भऽ गेली अन्तर्हिता भुवनेश्वरी गुणचर्चिता।
बाद गोकुलनाथ मन्त्र-सनाथ हुनि गुण गान कऽ
चलल झट श्रीकुञ्ज दिशि वृषभानुजा केर ध्यान कऽ॥

[४७]

लुक झुक करइत रवि, बलबान्धव मन्त्रक बल सँ संस्मृति पाबि,
मुदित-मने श्रीकुञ्ज निकट उत्कट अभिलाषा हिय मे दाबि।
अवितहिं आकर्णित कऽ कुञ्जस्थित ककरो गप खूब अकानि
लगला सुनय सुनय-रत्नाकर छपकि अपन विषयक से जानि॥

—:o:—

छठम सर्ग

[१]

कह सखि ! कुलिश सनक के सनकल एहेन व्यथा दय देल हे।
पावित – हृदय पाबि जे तोहर अकथ वेथित भऽ गेल हे॥

[२]

'एक दिशाह साहस न पिरीतिक', लोक–कथा नहि फूसि छै,
हरितज्ञान हरि लखि बुझलहुँ कहुँ वैसलि राधा रूसि छै,
बोधि कृष्ण पुनि विकलमना ऐलौहँ मनावक लेल हे ॥क०॥

[३]

एम्हर तहूँ तँ मुरुछलि छलिह, तकर कारण नहि ज्ञात हो,
संज्ञा पाबि कान्ह संज्ञा टा और न दोसर बात हो,
ठहकल, काल्हुक हरिक सङ्ग प्रणयक कलहक फल भेल हे॥क०॥

[४]

सोचल पुनि चलनयनि ! कलह–कण्टक विनु प्रेम-सरोज की ?
से तँ तोँ केहरि कटि आ' हरि जानि करह नहि रोज की ?
तखन कोन सन्ताप–अनल केर ताप करय ई खेल हे ॥क०॥

[५]

तव दुख तबधि गेलहुँ पुनि हुनके--लाबय, देखल वेहोश ओ,
कहब कोना किछु हब न रहल, सुधि-बुधि केर सठि गेल कोष ओ,
खसलहुँ मुरुछि हुनक लग लगले, ता' लय दया अलेल हे ॥क०॥

[६]

आब कहादनि सँ मुनि नारद कहल होश मे आनि कऽ,
हिनक न करह कनेको चिन्ता पुरुष पुरातन जानि कऽ,
किन्तु शीघ्रता-सहित जाह-राधा-हित, बनु न बलेल हे ॥ क० ॥

[७]

आधि-समाधि हरिक हम तोड़ब ललिते ! स्तवे सुनाय कऽ
तखने पुनि पुनमति सखि तोहर जगथुन देखह जाय कऽ
आकर्षित सित आत्मा जनिकर करइछ हरि सँ मेल हे ॥क० ॥

[८]

मुनि कथनीक सत्यता पाओल नीक दशा तुअ पाबि कऽ
एसगरि छह तें गरि न लाज मे कहह अपन सखि भाबि कऽ
कोन दुसह दुख सँ तों बनलिह जनु दीपक विनु तेल हे ॥ क० ॥

[९]

सुनि अनुभूति सहानुभूति केर—भूति-भरल ललिता-कथा,
लोचन-वारि निवारि राधिका वेदन-भार सँ संश्लथा,
कारण दुखक सुनाबय लागलि टारि वदन सँ चेल हे ॥ क० ॥

[१०]

सजनि ! पुछह से जनि, गत रजनिक सपनक तेहने बात हे ।
बात-कम्पि-भालरि औखन हिय भाविक भावि निपात हे ॥

[११]

छन भरि जकर अभाव न भावय पन्थक पाकड़ि श्याम जे,
भिन्न भिन्न रूपक रूपक—देखवै अछि आठो याम जे,
परम-भयङ्कर विरह तकर, सुनलहुँ कानें साक्षात हे ॥ स० ॥

[१२]

बारि बारि झख जीवौ वरु, विनु मनि जिवैत मनिआर हो,
मेघ न रहलहुँ जगमगैव जग विज्जुलताक निआर हो,
मुदा मुदाम्बुधि-हरि सँ छन भरि रहि न सकब हम कात हे ॥स०॥

[१३]

सविधि स्वयं विधि जनिक सङ्ग परिणय करबाओल आबि कऽ
जै' उत्सव कें यज्ञ किन्नरो-सब देखल गुण गाबि कऽ
साक्षी तकर मृगाक्षी ! ललिते ! भाण्डीरो तरु ख्यात हे ॥ स० ॥

[१४]

धूरा माटिक खेल अधूरा—तजि तुरन्त चितचोर जे,
चोर चोर क्रीड़ा करैत अछि जनितहुँ तत्त्वनिचोर जे,
खन नुकाय, खन प्रकटित-काय, कहै हसि हसि "पू भ्रात" हे ॥स०॥

[१५]

मचकि चलब ककरा पर, हरदम चकित हैब की देखि कऽ
तान सुनैत उतान घमण्डें—मान करब की पेखि कऽ
सम्मुख नहि पहु मुख तें यौवन-जीवनहुँक अरिआत हे ॥ स० ॥

[१६]

सुमति-मतिक मन्त्रें बचि जाइअ डसने जकरा साप हो,
किन्तु तकर रक्षक के—जकरा पर साधक केर शाप हो,
अबला उपर अदृष्टि-वलाहक कैलक विद्युतपात हे ॥ स० ॥

[१७]

हिचुक्कि खनहि चुकि फेर सम्हरि भरि नयन बाजि चुप भेलि हे।
जैं भानुजा, कहल अनुजा सम ललिता कर गर मेलि हे ॥

[१८]

सखि ! तुअ तुअल वकुल सन आकुल कुलबधु दशा विलोकि कऽ,
ससरि रहल हिय, सरि भऽ जकरा राखि सकी नहि रोकि कऽ
तें समुचित, चित सावधान करु, डुबब आधि-निधि हेलि हे ॥हि०॥

[१९]

प्रति कारज केर आलि ! छैक—प्रतिकार जगतमे जानि लै,
स्वस्थ चित्त बिनु कैने खसब्रह—चित्त, कथा ई मानि लै,
तोर कलेशक लेश करै हमरो जीवन सँ खेलि हे ॥ हि० ॥

[२०]

अहल भोर सँ भोर मकइ बनि सहस सहस व्रजबालिका,
कोटिक कऽ उपचार उच्च—कोटिक जँ पूजल कालिका।
तें पौलह सुधि तों सुधि वन्दित, आब न बनह बलेलि हे॥हि०॥

[२१]

नियति–नटीक हाथ मे देव—दनुज मुनि सब केर टीक छै,
घटय सकल घटना घट घट मे जैह कर्म सँ ठीक छै,
यतन कोटि कय सकय न क्यो जन ताहि कर्म कें ठेलि हे॥हि०॥

[२२]

तखन सधारण सपनक गपवश धारण करह गलानिकें,
स्वप्निल–जगत करै की सङ्गत कोनो लाभ वा हानि कें ?
खिन्न बनलि छह व्यर्थें बुझितहुँ तहुँ सपनाक झमेलि हे॥हि०॥

[२३]

तें बनबह नहि सन्न, प्रसन्न–मनें सबटा विस्तार सँ,
अपन सपन केर बात कहह, तिल कें न करह सम तार सँ,
हरि दुःस्वप्नक दोष सकल,हरि लेथुन्ह तोहर अलबेलि हे॥हि०॥

[२४]

सुधा-सनल मन ललित-वचन ललिताक किशोरी सूनि कऽ,
पठित–परम-पटु-शुकक पाठ-श्रवणोत्सुक मन सम गूनि कऽ
चिबुक शोभितर्जनी कहल-सजनी सँ, सुनह नवेलि हे॥हि०॥

[२५]

काल्हुक कान्हक कलहक चिन्तन-करइत निशि भरि जागि हे।
खेपल, पल भरि पल नहि लागल-छल आँखीकें बागि हे॥

[२६]

भोरुक मन्द-बसात बहल की- मन्द अदृष्टि-बसात ई,
आँखि मुना गेल शीत-वात यमुनाक परसि वा वात की ?
जानि न, तन-निकुञ्ज सँ–कुञ्जरगमनि गेलहुँ हम भागि हे॥का०॥

[२७]

नाना-लोक विलोकल, लोक-ललाम अनेको धाम केँ,
वन उपवन तरु राजि वनस्पति-राजित, नगरो गाम केँ,
देखइत गमन करैत विहङ्गम जेना उड़य अनुरागि हे ॥का०॥

[२८]

एकाएक एक ठाँ जैतहिं रुद्ध कैल अभियान ओ,
चित मोहक सञ्चित समग्र-सुख-साधन-अर्चित भान ओ,
जे निहारि धनि ! हारि-कल्पनो मूक कुतुक-रस-पागि हे ॥का०॥

[२९]

तेहेन अगम, मुनिहुँक न जतय गम, आगम निगमक खानि जे,
गमगम टा गमकैत समीरँ-सेवित गुण-गण-धानि जे;
त्रिविध वासना,त्रास-विनाशक हेतु ज्वलित जे आगि हे ॥का०॥

[३०]

विवरन दैत जकर विवरन-शारदो, विवर नहि शेष की,
चाहय अपन नचा हृय-मानस फणा समेटि, गनेस की ?
सेवथि अग ने सहमि तदपि वरनव हम नव-रस लागि हे ॥का०॥

[३१]

मध्य दिनक कोटिक दिनकर सँ बढ़ल जकर आलोक हे ।
कामधेनु गो-लोक-अलङ्कृत, नाम जकर गोलोक हे ॥

[३२]

गोपित, गो-गोपिका गोप-युत, गीत-वेद-मृदु-गीत जे,
गोल मोल अनमोल दृश्य, श्रुत-सतत-रास-सङ्गीत जे,
जतय अनल्पकल्पवृक्षक तरु हरण करय सब शोक हे ॥म०॥

[३३]

उपर पचास कोटि योजन वैकुण्ठहुँ सँ स्थित छैक जे,
लक्ष कोटि योजन मे विस्तृत तुला न अपर रखैक जे,
वृन्दावन सँ व्याप्त, जकर-सपनो देखै न कुलोक हे ॥म०॥

[३४]

विरजा सँ वेष्टित, सहस्त्रशः-स्वर्ण-शिखर सँ मण्डिते,
कोटि कोटि मन्दिर आश्रम सँ शोभित सदा अखण्डिते,
नगाकार प्राकार पद्मिनी-परिखेँ जै ठाँ रोक हे ॥म०॥

[३५]

हीरक-हार-सार सँ निर्मित जकर सुभग सोपान छै,
इन्द्रनील कौस्तुभ सँ जगमग हर्म्य कते, न प्रमाण छै,
इन्द्रसार सँ पाटल दर्पणयुक्त कपाटक थोक हे ॥म०॥

[३६]

सोड़ह द्वारि, जाहि पर दीपित रत्नक दीप अनन्त छै,
परम-प्रफुल्लित-पारिजात पुष्पक न गमक केर अन्त छै,
सङ्गिनि ! सुन. जे लखि तत चित न अशोक,तथापि अशोक हे ॥म०॥

[३७]

ताहि मध्य मणि-रचित, रत्न सँ खचित नितान्त अनूप हे ।
सिंहासन, नहि अपर जकर सन देखल न जे सुरभूप हे ॥ता०॥

[३८]

तै पर कोटिक मन्मथ-मन्मथ, नवनीरद आकार मे,—
सस्मित मितभाषी, कौखन नहि जनिकर चित्त विकार मे,
पीताम्बर वर-मुरलि-पाणि आजानुवाहु अपरूप हे ॥ता०॥

[३९]

कौस्तुभ-कलित, त्रिभङ्ग, चन्दनेँ-लिप्त अङ्ग, वनमाल सँ-
शोभित, मोर पुच्छयुत रत्न-किरीट, दैत द्युति भाल सँ,
रतन-कटक-केयूर-कुण्डलेँ भूषित शान्त सरूप हे ॥ता०॥

[४०]

सस्मित सतत अपरिमित थिर-यौवनयुत गोपीवृन्द सँ-
स्नेह सहित अवलोकित-वेष्टित सुर मुनि रूप मिलिन्द सँ,
अनमन कृष्णे; नहि नहि स्वयं कन्हैये किछु न विरूप हे ॥ता०॥

[४१]

शारद-राका-पति-मुख, उन्नस, मुखर-मधुर - मञ्जीर जे,
वारिजनयन, मोतिकन-दशन, देखैत परम गम्भीर से-
समासीन, विधि-हरि-हर अर्पित नित्त दीप ओ धूप हे ॥ता०॥

[४२]

आश्चर्यित नहि बनह, अपन-अर्जित पुण्यक फल पावि कऽ
देखल हमरे सन ककरो नहि, हमरे वत्तज दाबि कऽ
हास विलास करै छथि ओ, ता' दुर्भाग्यक अनुरूप हे ॥ता० ॥

[४३]

जानि न आँखि ककर लगने सपनो मे आँखि लगैत हे।
देखि न पाओल आलि ! अपन-वनमालिक छाँह भगैत हे॥

[४४]

सुर मुनि सहित सदस्य सकल चल गेल छला तै ठाम सँ,
"ने ओ देवी ने कराह" बुझलहुँ-तखनुक परिणाम सँ,
ता' क्यो सखो आवि-वाणी लुत्ती सँ हृदय दगैत हे ॥जा०॥

[४५]

सूचित कैलक, अनुचित-रति-रत पहु छथि विरजा सङ्गमे.
वृन्दावन मे वनमाली-जीवन-धन तोर उमङ्ग मे,
सुनिते अनुचित उचित विचारो-तजि कऽ क्रोध जगैत हे ॥जा०॥

[४६ [

भग्न मनोरथ भेने, रथ चढ़ि-सखी सङ्ग कोपातुरा,
गेलहुँ ततै, जै ठाँ विहार दुहु करै छला, नहि जे पुरा,
हरिक परम-प्रिय श्रीदामा छल पहरा ततै करैत हे ॥जा०॥

[४७]

क्रोधेँ हम आन्हरि हरि-किङ्कर केँ कहलहुँ हँट दूर जो,
पहिरि कपट-पट रति-लम्पट जे, तकर दास तोहि धूर हो
किन्तु अटल ओ हँटल न पथ सँ करमे वेँत रखैत हे ॥जा०॥

[४८]

पुनि गर फाड़ि कैल गुरु गरजन, श्रीहरि शब्द अकानि कऽ,
भेला अदृश्य. नदी बनली विरजो डरि बहुतो कानि कऽ
दुहु मे ककरहु पौल न, पुनि-आगुक गप छी सुनबैत हे ।।जा०।।

[४९

विह्वल बनि विरजाक विरह सँ तकरे तट आसीन हे।
करइत पूर्ण विलाप, धूलि – धूसर,प्रलाप खन, खीन हे ।।

[५०]

योग जगा अजगात्र रचल जे से पुनि इच्छामात्र सँ,
कैल ओंकार निर्माण, चौदहो भुवनक मोहक गात्र सँ,
आ' सब तेजि रहथि तकरे अधरासव पानहिं लीन हे।।वि।।

[५१]

सुनि सखिवर्गक बात सुनिश्चित कोप-भवन मे कातरा,
कनइत काल कतेको काटल आलिङ्गित कैने धरा,
से बुझि श्रीदामायुत ऐला मनवक हित हरि दीन हे।।वि०।।

[५२]

लखि हुनका हम बिलखि तथा क्रोधेँ विकराल स्वरूपिणी,
कैने भौंह अराल कहल सुनितहुँ अनुनय अति मानिनी,
छलह न एना, छलह जे' ठाँ चल जाह ततइ मतिछीन हे ।।वि०।।

[५३]

कते कोटि कुवलयनयनी कान्तां अछि ऐ' गोलोक मे,
वढ़ि हमरहु सँ, ततइ जाह, पुनि पुनि न डुबाबह शोक मे,
सुनितहुँ अञ्जलिबद्ध ठाढ़ ओ—सेवक-जनक अधीन हे ।।वि०।।

[५४]

किन्तु अधिक मानहुँ केँ धिक् धिक्, बनि अतिकुपिता जाहि सँ,
उठलहुँ बाजि वाजि चञ्चलचित उपमित होइत वताहि सँ,
सुन सखि ! जे सुनिते लगले—लगते ककरा नहिं घीन हे ।।वि०।।

[५५]

जे विरजा डरि नदी बनालि हमरा डरसँ घनश्याम हे।
नद बनि रमण करह तकरे सँ पूर्ण हेतउ मनकाम हे॥

[५६]

लोक हसत गोलोक-नाथ केर ई क्रीड़ा सुनि कान सँ,
छली व्यक्ति केँ केहेन दण्ड, जग बूझत एहि प्रमाण सँ.
ऐ' रूपेँ शापित भेल हरि, आ' क्रोध हमर अविराम हे॥जे०।

[५७]

देखि कोटियो गोपी चमर—आदि लेने निज हाथ मे,
कोप-शमन-हित आराधन मे छलै सटा कर माथ मे,
मुदा भूमि-पतिता हम खासै—लैत रही तै ठाम हे ॥जे०॥

[५८]

अनुनय-निरत तदपि पहु जाथि न लखि मम प्रेरित-गोपिका,
कहल कृष्ण सँ सविनय, क्रोधेँ तप्त एखन श्रीराधिका,
तेँ सम्प्रति चल जाउ—मना रहलहुँ हम सब गुणग्राम हे॥जे०॥

[५९]

शान्त कोप भेने आयब, सुनि कृष्ण अपर गृहकेँ गेला,
हुनि दुर्दशा देखि श्रीदामा क्रोधेँ कम्पित हा ! भेला,
तथा बुझौल बहुत हमरा, गुण वरनि हरिक अभिराम हे ॥जे०॥

[६०]

स्तुति सुनैत श्यामक हुनि कृत हम विगड़ि शाप हुनको देलौँ,
तजि गोलोक होअह तोँ निशिचर, ई कुकृत्य बड़का केलौँ,
सुनि शापिता कैल हमरो ओ हरिक भक्त उद्दाम हे ॥जे०॥

[६१]

कैलह अम्ब ! क्रोध अवलम्बन, जैँ तोँ मनुज समान हे।
पाबि मानवी-देह तोहर सठि जायत सबटा मान हे॥

[६२]

वृन्दावन मे हरिक अंश लऽ जन्म वैश्य खनदान मे,
हैत महायोगी क्यो पूर्वक तोरे शप्त बढ़ि मान मे,
विदित रहत वसुधा मे जे की नाम पाबि रायाण हे ।।कै०।।

[६३]

छाया देह लऽग्र कऽ रहबह तकरे बनि कऽ गेहिनी,
आत्मा सँ हरि सङ्ग, लोक—कहतौह तथापि कलङ्किनीं,
शतवर्षावधि कृष्णवियोगक दुख सहबह असमान हे ।।कै०।।

[६४]

पुनि शापान्त होइत रहबह तोँ हरिक सङ्ग गोलोक मे,
कहि, प्रणाम कऽ गेल विभुक लग कनइत डूबल शोक मे,
हमहुँ गेलहुँ करइत विलाप, सुनि दुहुक शाप आख्यान हे ।।कै०।।

[६५]

बजला नाथ, अनाथ बनह नहि शङ्खचूड़ त्रैलोक्य-जयी,
भऽ शङ्करक शूल सँ हत ऐबह मम सन्निधि तोँ नयी,
अचलभक्त चल गेल प्रणत ई प्रभुक पाबि वरदान हे ।।कै०।।

[६६]

फेरि देखि विह्वलि मोहि शिर पर हाथ फेरि बजला अये !
भय न कनेको करह भावि दुख हमर वियोगक जैँ प्रिये !
राधा विना कृष्ण केर सत्ता बूझक थिक म्रियमाण हे ।।कै०।।

[६७]

तेँ व्रज मे वृषभानु-सुता भऽ रहबह तोँ प्राणोपमे !
वासुदेव हम नन्दक पालित रहब ततइ कुशमध्य मे,
लीला करइत विविध, विधिक वाक्यक करबे सम्मान हे ।।कै०।।

[६८]

बोधि एहि रूपेँ उदारचेता वक्षस्थल सँ सटा,
जैँ छन मे मम मनक वेदना सबटा देलनि ओ मेटा,
की सपना टुटि गेल, देखी तँ क्यो न कतउ सुनसान हे ।।कै०।।

[६९]

सपना ई टुटिते आली !
सठलै जीवन केर लाली।
आशो न रहल किछु वनमाली केर सङ्गक रे की ॥ स० ॥

[७०]

तखने तँ चिन्ता-व्याली,
डसि कऽ बनौलक कारी।
आत्माक कलश जनु खाली भेलै उमङ्गक रे की ॥ स० ॥

[७१]

बुझलौँ न तखन की भेलै,
सुधि बुधि सबटा लुटि गेलै।
चेष्टा शीघ्र हेरयलै सकलो अङ्गक रे की ॥ स० ॥

[७२]

जल्दी देखा दे दैआ !
कत भऽ नुकैल कन्हैआ ?
नहि सुषमा जकरा सन छै-कोटि अनङ्गक रे की ॥ स० ॥

[७३]

दर्शन विनु प्राण गमेबै,
वा तोँ रह अपनहिँ हम जैबै ।
नहि आब सहन हो घात-वियोग-तरङ्गक रे की ॥ स० ॥

[७४]

कहि कऽ चललि जैँ राधा,
दुरबलतेँ पबइत बाधा।
हरि भेल प्रगट झट लोचन-तुल्य कुरङ्गक रे की ॥ स० ॥

[७५]

देखि एक दोसर लग अपनहि-हम पहुँची उपरौँझि करैत,
झटकल झट कलधौत-लता, आ' नीलम-तरुकेर मान हरैत।
मुदा उदार-प्रकृति दुहुजन ता' पहुँचल नहि खसि ककरोपास,
जा' ललिता नहि आनि मिलाओल सुमन-शयन पर लैत निशास॥

[७६]

पाबि विविध उपचार सखिक पुनि राधा एवं नन्दकिशोर,
तकइत एक अपर-मुख, झर झर झहरबैत लोचन सँ नोर।
यतन कतेको कैल बजैहित, किन्तु न वाणी मे सञ्चार।
झलकि अश्रु कण कहै-कण्ठ बाझल दुहुजन छथि भेल नचार॥

[७७]

अहिना किछु छन रहल, तखन
अहिनायक-शयन किशोरिक हाथ,
पकड़ि धैर्य धऽ कहक उपक्रम
कैलनि, ललिता देखि सनाथ।
बाजलि अञ्जलिवद्ध नाथ! हम
छी अवैत लोढ़ने किछु फूल,
दुहुजन मुसुकानहि सँ नहि नहि
शब्द बाजि सकला श्रुतिमूल॥

—:o—

सातम सर्ग

[१]

प्रिये ! अप्रिये सपन केर सुनलौहँ नुका कऽ सबटा बात,
जकर असह्य-चोट सँ किछुए छन मे तोहर चोटकल गात ।
एवं ज्ञानक योग भेल हे ज्ञानक प्रतिनिधि ! निधि गुन केर,
मम सन्निधि ऐबाक न क्षमता रहल पाबि जैँ चिन्ता ढेर ॥

[२]

हमरो भेल व्यतीत कोना कऽ आजुक तीत-समय नहि ज्ञात,
देखल कोन खलक मुहँ भोरे, पौल जकर फल ई साक्षात् ।
कहाँ अहाँ, ई ज्ञान हरित छल, हरित-वनहुँ मे छलहुँ जरैत,
विहरित-वृन्दा-पथ पथरैल-नयन सँ छल नहि बूझि पड़ैत ॥

[३]

हँऽ अछि मन, मूर्च्छाक शमन कऽ मनबक हित तोहि ललिता गेलि,
तदनन्तर अन्तर नहि जानै कोन कोन रचलक विधि खेलि ।
देखी तोहरेटा हरेक छनमूर्ति बताहक छिच्छा पाबि,
घुरि फिरि ली दम आबि कदम तर नाकोदम छाती केँ दाबि ॥

[४]

परिचित देश विदेश बनल तैयो नहि पाओल तोर उदेश,
थाकि कदम लग कुञ्जस्थित ताकी जे ललिता लौत सनेश ।
डुमरिक फूल बनलि तोहर सखि हरल हमर बचलो जे ज्ञान,
जानि न, कखन कहाँ सँ नारद आबि मोर तोड़ल पुनि ध्यान ॥

[५]

हुनके कहने बुझल, अबुझ—थितिए मे ललिता पुनि ऐलीह,
तथा देखि मम दशा—दुर्दशापन्न ओहो तैंठाम भेलीह।
आ' आदेश पाबि मुनि सँ मूर्च्छिता-अहाँ कें देखक हेतु,
गेली, सूनि से रहलो सहलो टूटि गेल छल धैर्यक सेतु ॥

[६]

चलल न होय तदपि चललहुँ, की भेल अहाँ कें देखक निमित्त,
मुदा आइ भुतिआइ अनेरे भ्रान्त तते भऽ गेल छल चित्त।
क्यो गोहारि नहि, हारि पुनः बैसलहुँ नीपे तर आसन मारि,
मिलनक आसन मारि अकल्पित चिन्तें विकल प्राण सुकुमारि!

[७]

तकर बाद तोरे चिन्तनमे रत छलौहँ की गेलहुँ औंघाय,
देखल अगणित तोर तथा निज-रूप, पुनः से कहल न जाय।
सर्जन पालन तथा विसर्जन निखिल भुवन केर जनिके हाथ,
पाबि ताहि भुवनेश्वरीक सपने मे दर्शन भेलहुँ सनाथ ॥

[८]

अपन माय कें देखि वेदना सँ झमाय कहलहुँ हे अम्ब!
जल्दी देखा कहाँ अछि राधा, बिना जकर क्यो नहि अवलम्ब।
कहितहिं पाबि परस वात्सल्यक-रस-जननीक, निन्न गेल भागि,
वरद-हाथ मम माथ उपर रखने छथि सस्मित, देखल जागि ॥

[९]

लज्जित हुनि आवेसें निर्जित किछु बजैक हित फुटै न वाक,
की ओ कोर उठा कोरक सम कहइत भेली समुद्र दयाक।
वत्स! निखिल-ब्रह्माण्डक जननी हमहिं थिकहुँ, तों पुत्र प्रधान,
राधा आधारे सृष्टिक, हम देल तोहि निगमागम ज्ञान ॥

[१०]

अहिंक अधीन विधाता, हरि, हर सब ब्रह्माण्डक भिन्ने भिन्न,
अहाँ रही गोलोक लोक मे मम चिन्तन मे सतत अखिन्न।
खल-निग्रह-हित विग्रह धऽ राधाक सहित ऐलहुँ ऐ' लोक,
औरो कारण कते, जाहि सँ छोड़ऽ पड़ल एखन गोलोक ॥

[११]

किछु दिन रहि पृथ्वीक भारकेँ हँटा, जैब पुनि अपने स्थान,
लीला तावत करब कतेको सृष्टिक रक्षा हेतु महान।
किन्तु एतेटा भार तदपि खेलहिं मे रत गुनि कऽ न अभार,
बिसरि रहल छी काज अपन, तेँ सावधान हम कैल उदार ॥

[१२]

हमरे माया छल, जकरा छलला सँ लला ! भेलहुँ उद्भ्रान्त,
मातल अहाँ चमातल मे पथ चीन्हि न सकलहुँ बनिकऽ श्रान्त।
सावधान भऽ आब सृष्टि—रक्षार्थ विधान तेहेन अपनाउ,
रङ्ग रभस करितहुँ न भसय मन, तेँ कनिओ न कृष्ण ! अनठाउ ॥

[१३]

ई कहि अपन मन्त्र दऽ हमरा भेली अदृश्य हटा उद्भ्रान्ति,
शीघ्रे दूरदर्शिता पौलहुँ दूर पड़ायल सबटा भ्रान्ति।
हुनके सँ तुअ पता पाबि हम आबि गेलहुँ श्रीकुञ्जक पास,
नुका जकर लग सुनल सकल गप, आब प्रिये ! जनु बनह उदास ॥

[१४]

सम्भव तनिके माया मे पड़ि देखलह तहूँ सपन मे शाप,
देवि ! शपथ मम आब न कानह, वा न करह कनिओ सन्ताप।
मानिनि ! मानि लैह ई निश्चय बिनु तोहर, थिति हमर अन्हार,
पहिने राधा तखन कृष्ण—को नहि कहैत अछि भरि संसार ?

[१५]

पाणि-गृहीती-नारीकेँ बुझि गृही तीर्थ सम करइछ मान,
स्त्री 'आ' पुरुष या' न युग चक्र-सुदृढ़ ता चलय न जीवन-यान।
विधिक धरौल अहाँक तखन कर तेजि करब की हम अन्याय,
दय निज हृदय कोना कऽ आपस कऽ सकबे या' धरि अछि काय॥

[१६]

तखन एकटा बात, राखि सदिखन अपनो पत्निक सहबास,
बासव होथु, तदपि बिसबास न कऽ सकताहे पूर्ण विकास।
तेँ निज निज कर्तव्य तथा अधिकार सबहिं केँ बूझक थीक,
जाहि विना जाहिल जन भऽ कऽ जीवन चला सकत नहि ठीक॥

[१७]

देशक एखन तेहेन थिति छै' जे धर्म कर्म पर हो आघात,
छन-छन नृपलाञ्छन निशिचर-दल कऽ रहले सज्जनक निपात।
हनक हेतुएँ तकरा सभकेँ हंसवाहनक अनुनय मानि,
तारतम्य तजि नर अवतार ग्रहण कैलहुँ सृष्टिक भल जानि॥

[१८]

छी जनैत अहुँ, पुतना आदिक कते खलक कैलहुँ संहार,
निर्विष यमुना बना विषम थिति सँ गोकुल केर कैल उबार।
मुदा अपार काज औखन हमरा कपार पर अछि, हे देवि!
साध न अनका बुतेँ तकर साधन बनौल हमरे सुर टेबि॥

[१९]

अङ्गी-जन सँ अङ्गीकृत कऽ पार लगाबक थिक से काज
प्रतिज्ञाक पालन हित तुच्छे धन-जन प्राण सहित सुख राज।
हरिश्चन्द्र जैँ हेतु बेचि-दारा सुत अपनहुँ डोमक हाथ,
काशी जाय बिकैला, जनिका सँ देशक इतिहास सनाथ॥

[२०]

किन्तु एहिमे परम अपेक्षित अहुँक अपेक्षित होयत त्याग,
मातृभूमि हित हमर असह्-विरहो सहबाक हैत बुझि भाग।
नरकगामि तै' नरक कथा की जे विपन्न देखितहुँ निज देश,
घूसल रहै बिना सल घर मे पबइत वनिता, सुत-आवेस ॥

] २१]

तेँ खन सङ्गम आ खन विरहो-पैब हमर, स्वप्नक ई बात,
रति-रत रहब सतत उचितो नहि, ककरउ हेतुक सरसिज गात !
सदा चन्द्रिका चर्चित रहितै, जौँ निशि, आकर्षक न ततेक,
कृष्ण-पक्ष केर बाद धवल-दल-ज्योत्स्ना मोहक मनक जतेक ॥

[२२]

और एक गप, जखन अनत हम जाइ सृष्टि रक्षाक निमित्त,
नारि सुधारक हेतु अहूँ किछु काज करी भऽ मोदित चित्त।
एवं बालवृन्द केँ किछु किछु, पढ़ा सिखावी लुटिओ भास,
गीत नृत्य मम भक्तिक शिक्षा, दैत चित्त नहि करी उदास ॥

[२३]

कर्मे ईश्वर रूप, कहै' अछि-मीमांसा शास्त्रक सिद्धान्त,
जकर बिना जन अकर्मण्य हो, मन कौखन रहि सकै न शान्त।
अही सभक शिक्षा हेतुक छल सपना मध्य वियोगक शाप,
नहि डेराउ, हम स्वयं कोना-सहि सकब तोर विश्लेषक ताप ॥

[२४]

सुनि हरि-कथा रहस्य पूर्ण, सम्पूर्ण चन्द्रवदनी सुकुमारि,
हिचकी लैत कोनहुना बाजलि, दुखेँ ज्वलित-तन खूब सम्हारि।
जौँ सपना हो सत्य, करब की-तखन अहाँ बिनु बनलि अनाथ,
हमरा एखन सान्त्वना हेतुक कहि रहलहुँ अपने किछु नाथ !

[२५]

कहाँ कही हम सदिखन हमरे-सङ्ग रहू तजि कऽ सब काज,
कहाँ कही हम सृष्टिक सङ्कट देखि बढ़ू नहि भऽ निर्व्याज।
कहाँ कही हम साधु-विनाशक-दुष्ट जनक नहि करु संहार,
कहाँ कही हम अमर-मण्डली केँ न दिअबिअनु निज अधिकार

[२६]

कहाँ देश वा पति पर सङ्कट देखि आर्य-ललना पछुऐल,
कैकेयी आ' सीता रण सुनि रहली घर मे कहाँ नुकैल ?
हमरे जाति निशुम्भ शुम्भ आ' महिष मर्दिनी छथि विख्यात,
सुख मे मृदुता, दुख मे-कर्कशता नारिक गुण हे घनगात !

[२७]

तखन दिअऽ विश्वास, श्वास या' ली ता' हमर जुड़ावी प्राण,
तेजि ओना चलि जाइ न प्रियतम ! घन-तम मे तजि कऽ बनि आन।
करु बाहर सुधार देशक पहु, हम समाज मे नारि सुधार-
करइत रहब, कण्ठ-गत या' धरि प्राण रहत हे नन्द कुमार !

[२८]

किन्तु न हो बिसबास रहत सहबास अभागलि केँ चिरकाल,
थिर कतबो मन करी, आँखि लग लगले आबै सपना काल।
हे अनपाय ! उपाय तकर की, कहह गोविन्द ! तोहीँ सब योग,
कोन प्रकारेँ दूर हैत हृदयव्यापी चिन्ता केर रोग ॥

[२९]

कनिते कहल जैँ राधा, फुट हो न बातो आधा,
प्राणक बुझि बाधा बजला नाथ-थीक शपथ ने कानी ॥

[३०]

अर्थो विना हो वाणी, वीची जलभिन्नो मानी.
तुअ विनु नहि जीवै बनल अनाथ-थीक शपथ नहि कानी ॥

[३१]

विश्वासे 'जौं नहि तोरा देखह सखि हमरे ओरा,
कहि कऽ हिय चीरल निज यदुनाथ, थोक शपथ नहि कानी ॥

[३२]

देखिते वृषभानुक कन्या—पहु हिय मे राधा अन्या,
चीत्कार करैत सुनल दृग् धऽ कर साथ थीक शपथ नहि कानी ॥

[३३]

पहु पहिलुक पुनि रूप देखौले, राधा शम चित मे पौले
आ' हरिक चरण धऽ बजली बनलि सनाथ, सुनल जैँहे सज्ञानी ॥

[३४]

हे गोकुलपति ! पतितोद्धारक ! पतिगेलहुँ हम आब,
पति-निरता हम त्यागक विपतिक नहि देखवैक प्रभाव।
सपना रहौ सत्य वा फुसिए, रहब अभिन्ने नाथ !
सिद्ध कैल मुनिसिद्ध-सुसेवित ! अहाँ, रहल नहि काथ ॥

[३५]

सुनि सस्मित हरि कैतवहीना भानु सुता केर बात,
भुजग-शयन भुजपाश-बद्ध कऽ प्रिया, मोद-जल-पात--
करइत, कोमल-कर सँ नहुँ नहुँ छुबइत हुनक कपोल,
नहि नहि कहितहुँ किन्नहुँ नहि छोड़थि धृत कुण्डल लोल ॥

[३६]

पुनि पङ्कजलोचन चन्दन—कस्तूरी पङ्क निशङ्क,
अङ्ग अङ्ग मे मलल किशोरिक—निर्मल, आ' नख-वङ्क—
रूप मयङ्क उगौल उरज पर, सरि भऽ केसरि देल—
वेसरि-मण्डित मुख सम्मुख कऽ रति-पण्डित चुमि लेल ॥

[३७]

शिथिलित-ललित-वसन कऽ बश नहि रतिरण जोर मचौल,
मदन-दुन्दुभी-नूपर अविरल बाजि बाजि किछु गौल।
किङ्किण-कङ्कण-मञ्जरीक धुनि कैल तुमुल जय घोष,
दुहुक दशन दूहुक दशनच्छद क्षत कैलक भरि पोख॥

[३८]

स्वेदसिक्त रोमाञ्चित विगलित—केशपाश लेपल सिन्दूर,
अचले पल छनि जनिक पावि-निधुवन-क्रीड़ा-श्रम-निम्न-प्रचूर।
ताहि भानु-पुत्रीकें पुनि हरि जगा भानुपुत्री-तट आनि,
रतिमर्दित-शृङ्गार पहिलुके जकाँ सजाओल सारङ्ग पानि॥

[३९]

आ' सस्मित ई कहल हासद्युति-धवल कपोलवतीकें श्याम,
शीघ्र रास-लीला कऽ बहुतो रास देखायब दृश्य ललाम।
एखन आब सजनी! रजनी भेल बहुत जाउ घर, हमहुँ तुरन्त,
जाइत छी निज भवन तेजि वन, माँ कें होइत हेतनि कलहन्त॥

[४०]

नमितमुखी राधा सुनि हरि-पद-पद्म-उपर निजमस्तक राखि,
उद्यत भेली चलक हित जैं रस-ब्रह्मानन्द-सहोदर चाखि।
ललिता आबि कहाँदन सँ दन-दन करैत टूटा सुम-हार,
पहिरा देल दुनू कें कहइत अमर रहौ ई दुहुक विहार॥

[४१]

सखिक दत्त-उपहार—हार-शोभि दुहु घर चलल।
बदला मे भुज भार-दऽ दऽ निज, सस्मित-वदन॥

—:o:—

आठम सर्ग

[१]

शरद धवल तिथि काम साँझकेँ, छल न यदपि घनश्याम,
वृन्दावन मे तदपि एक दिन, वनमाली घनश्याम।
आबि निहारि चतुर्दिक सोचल, अचलकीर्ति नटराज,
सर्ग बनल अछि केहेन निसर्गक हाथेँ सुन्दर आज॥

[२]

समुदित शशी मुदित कोटिक कर मे कुङ्कुम भरि पूर्ण,
प्राचीनो प्राचीक वदन पर, लेपल सस्मित तूर्ण।
छिटकल-कल-अरुणाभ-रङ्ग, सौँसे वनकेँ रङ्गि देल,
की क्यो गणक विना गणनहिँ, होरिक तिथि कहि ठकि लेल॥

[३]

चटपट.बदलि मुदा से पट पुनि, श्वेत-वसन वुधिआरि—
प्रकृति पहिरि जनु जनादेल, नहि तोड़ह संस्कृति-आरि।
थिक न आइ होरिक तिथि सुनि कऽ सुनिश्चिते सिद्धान्त,
तेजि केसरिआ वेष, बनल वन धवलित ललित नितान्त॥

[४]

स्वच्छ-कान्ति आकाश, प्रफुल्लित हँसि रहले आ' काश,
सप्रकाश दिक्‌चक्र लेल जनु, चक्रक पूर्ण प्रकाश।
विना समय राका-शशि करइछ, किरणक सौम्य झकास,
नुका सकल तम गेल, लेल वा चिर दिन हित अवकाश॥

[५]

झिलमिलाय अगणित उडु ज्योति मिलाय जकर एकठाम,
विधु लग बिधुऐले रहते जनु बुध लग मूर्खग्राम।
तदपि प्रकृति-सङ्केत पावि शङ्के तजि व्यंग्य सुनैक
प्रकट भेल, कञ्जौक निकट कहुँ भेँट दृश्य होइ छैक॥

[६]

वनदेवीक नवेली अलबेली वेली सुकुमारि
हँसै ठहाका मारि लुबुधि अलि पिवि रस दैछ झमारि।
ऐँ असमय मे ई फुलैल हो भान मदन कहुँ ऐल,
चलैबाक हित हमरे पर की चोखगर शर अछि लैल॥

[७]

तखन आव खन कहाँ? विपत्तक देखितहुँ होइत सङोर,
वैसव कहवै शव-थिति वीर शरण रण वा कि अङोर।
तेँ मन्मथ-मद मथन हेतु ई समय न छोड़ब आज,
'सवहिँ नछोड़ब' तोड़ि हुनक प्रण करब अपर पुनि काज॥

[८]

मुदा पछाति कहै न अमुक साधन विनु विजय न भेल,
त्रुटि ताकक ताकहि मे जैँ खल रहै, नीति कहि गेल।
तेँ कनिओक कसरि नहि राखी वढ़ौ सकल रति भाव
देखौ लोक तखन कन्दर्पक दर्पक नष्ट प्रभाव॥

[९]

एवं लाख लाख गोपीहुँक युग युग केर अभिलाख
पूर्ण करक पुनि समय न भेटत गछि विनु कैने धाख।
तेँ, ई शरद, तरणि-तनुजा-तट वृन्दावन रमणीय,
सुरभित सरस समीर धीर कुसुमित निकुञ्ज कमनीय॥

[१०]

सब साधन समवेत्त एखन वश मुरली बजिते मात्र,
वृन्दक वृन्द एती गोपीगण साजि विभूषा गात्र।
सभक सङ्ग कऽ रास रङ्ग रस चित नहि विकृत बनैब,
मद न रहत मदनक मनमे से योगक्रिया अपनैब ॥

[११]

ई विचारि माधव भुवनेशिक जपि कऽ मन्त्र प्रवीण,
योगेँ बनल ऊर्ध्वरेता चर अचर जाहि मे लीन।
आत्माराम रमण हित से अपने आत्मा केर सङ्ग,
वंशी अधर लगौल गौल पुनि मधुर मधुर निःसङ्ग ॥

[१२]

मुररिपुकेर मुरलि-धुनि होइतहिं सुखलो तरु लतिकाक,
डारि·डारि पल्लवित सुपुष्पित झूकि फलेँ महि ताक।
छवो ऋतुक फल फूल दृश्य सब रस-आसव अविराम—
सब द्रुम सँ सुरभित पिबि गुञ्जित लुबुधल अलि अभिराम ॥

[१३]

श्रुत पिक पञ्चम तान तानलक वल्ली विविध वितान,
खिलि उतान निज सौरभ-बाँटल सब वृक्षक सन्तान।
विषमता न कहुँ, प्रस्फुटता नव सबतरि देखल गेल,
भक्तानन - सरोज - सविता - नन्दज - महिमा केर लेल ॥

[१४]

जूही, कुन्द, केतकी, चम्पा, वकुल प्रफुल्लित भेल,
लती मालती माधवीक सुम-सौरभ मन हरि लेल।
जकर झरल अम्लान फूल सँ सबतरि तल्प अनल्प,
रचल अचञ्चल हिय सँ अपनहि प्रकृति कतेको कल्प ॥

[१५]

सकल शयन कस्तूरी कुङ्कुम चन्दन 'आ' घनसार—
वासित स्वयं बनल छल जै' पर माला विविध प्रकार।
सङ्गहिं कुसुमित रूप अपरिमित कमल कुमुदिनी पूर्ण
स्फटिक सदृश जल भरल कते क्रीड़ा-सर दर्शित तूर्ण॥

[१६]

कूजित सारस सरस हंस चकबा चकोर जै' केर
सुषमा छल बढ़बैत निरुपमा जलचर जेरक जेर।
स्वच्छ-संखमर्मर सँ निर्मित जकर सुभग सोपान,
मणि-मण्डित, सब शिल्पक पण्डित विधिक कैल निर्माण॥

[१७]

ठाम ठाम वेदी ललाम जै' तट पर निर्मित भेल,
पुष्पित लघु-तरु वेष्टित जै' पर मौक्तिक झालरि देल।
विकचित चित्त मोहक अनन्त-उद्यान रम्य जै' ठाम,
दधि लावा अगणित मङ्गल घट कदली थम्भक दाम॥

[१८]

दीपित-रत्न-प्रदीप, धूप सँ सुरभित दिशा समस्त,
द्राक्षा पूगी नारिकेल आदिक फल जतै प्रशस्त।
सूत्र बद्ध-आमक पल्लव केर तोरण ललित नितान्त,
ततइ वर्तुलाकार रास-मण्डल लखि राधाकान्त॥

[१९]

हँसि बजौल मन-मोहक वंशी तार स्वरेँ, विस्तार—
होइत जकर निस्वन चट ब्रज भरि कऽ उठले गुञ्जार।
जे सुनि मदनविह्वला राधा मुरुछलि तानहिं लीन,
पाबि होश पुनि कातरि बनलि अकानि चहूँ दिशि खीन॥

[२०]

ध्यान करैत कृष्ण-पद-पङ्कज तेजि लाज सब काज,
उठि, घर छोड़ि चललि वृन्दावन सङ्गे सखिक समाज।
गणना कऽ न सकथि गणनायक ततै गोपिका-वृन्द,
सब समान वय नव-यौवन—मण्डित लावण्य अमन्द ॥

[२१]

क्यो बाला माला-ललाम-कर, क्यो शुचि चामर हाथ,
चन्दन कुङ्कुम कस्तूरी सँ ककरो हाथ सनाथ।
क्यो लगौल-ताम्बूल-पात्र लऽ हँसइत मोद विभोर,
रङ्ग विरङ्गक वसन विभूषण—लसित स्वर्ण सन गोर ॥

[२२]

उत्कण्ठाक विवश क्यो कण्ठा खोपिक ऊपर राखि,
काजर-कलित एकै लोचन क्यो चल चल जल्दी भाखि।
सुतइत सुत क्यो तेजि, स्वामि-सेवा करइत क्यो भागि,
कौरक अन्न फेकि क्यो, चलले सब हरिदर्शन लागि ॥

[२३]

क्यो पति पिता बन्धु सँ रोकलि गेलि न आपस भेलि,
श्रीगोविन्द-पदारविन्द—मकरन्द हृदय मे मेलि।
क्यो निरुद्ध-अबला बलात मुनि सम मुनि दूनू आँखि,
आत्म-विहङ्गम-गमन-योग चट लगा समाधिक पाँखि ॥

[२४].

च्युत-माया-बन्धन धन धन बनि उड़ि अच्युत मे लीन,
काम क्रोध लोभादि वशहुँ हरि भजि हो मुक्त प्रवीण।
एहि प्रकारेँ अपन अपन तजि भवन गोपिका वृन्द,
वृन्दावन जा' देखल रासमण्डल सौन्दर्य अमन्द ॥

[२५]

कान न ककरो सुनल जेहेन से कुसुमित कानन कान्त,
पुष्प-पराग-पुञ्ज सँ पूजित पवन-सेव्य एकान्त।
मधु-मद-मातल मिलित-मधुकरी—मधुपेँ गुञ्जित भेल,
क्रीड़ित-कोकिल-काकलीक कलरवेँ कलित बनि गेल॥

[२६]

श्रीवृन्दास्थ रासमण्डलमे कोटि कोटि सखि सङ्ग,
भऽ प्रविष्ट वृषभानुनन्दिनी नूतन पाबि उमङ्ग।
देखल कोटि-कन्दर्प-दर्पहर सस्मित श्यामकिशोर.
रत्नाभरण-विभूषित अद्भुत पक्व-बिम्ब-सम-ठोर॥

[२७]

सदा अभङ्ग त्रिभङ्ग तदपि अति उज्ज्वल रहितहुँ कृष्ण,
वीतराग षड्राग--निपुण वंशीहित सतत सतृष्ण।
विगतपीड़ पुनि वर्हापीड़ अलक नंन्दहुँ शिर राखि,
विदित अलकनन्दे संज्ञा निज चरणामृतकेँ भाखि॥

[२८]

देखि, प्रणाम मनहिँ मन कऽ सस्मित मुख पट सँ झाँपि,
रोमाञ्चित चिरसञ्चित—प्रेमाञ्चित--चित्त किछु किछु काँपि।
वङ्क--विलोचन केर कोन सँ अनिमिष देखइत रूप,
स्वेद--सिक्त निज-दशा विसरि पाओल आनन्द अनूप॥

[२९]

ओम्हर देखि विश्वम्भर रत्नाभरण-भूषिता भेलि,
चम्पक--चारु--कान्ति गजगमनी सस्मितमुखी नवेलि।
मुनि-मानस-मोहिनी चीणकटि पहिरि दिव्य परिधान,
विपुल--नितम्ब-उरोज--भार सँ झूकलि छवि अम्लान॥

[३०]

मञ्जु-मालती-माला – मण्डित—कबरी-कलित ललाम
अगणित-वालवधू सँ वेष्टित सकल-भुवन अभिराम।
श्रीराधा ऐलीह निकट, झट दऽ कनिञे मुसुकान,
स्वागत करइत सभक कहल बनवैत मुग्ध भगवान॥

[३१]

हे सौभाग्यवती गोपीगण! की ईप्सित अछि काज,
जे हम करी, करीन्द्रमन्दगति! अहाँ सभक निर्व्याज।
की व्रज मे सकुशल अछि सब क्यो, कहु कारण ऐवाक,
घोर निशा मे अहाँ सभक आगमन करैछ अवाक॥

[३२]

माय बाप पति पुत्र वन्धु सब खोज करैत हेताह,
घुरि घुरि निज घर जाउ न ई थल नारि रहक थिक आह!
राकापतिक रश्मि सँ रञ्जित यामुन-जल-संयोग,,
पाबि सन्द-मारुत-कम्पित—तरु-दल-शोभित सुखयोग॥

[३३]

कुसुमित कानन अवलोकल, तेँ जाउ, न करी विलम्ब,
पति-सेवा, वत्सक पालन करु बुझि जीवन-अवलम्ब।
वा हमरे सिनेह सँ परवश सब ऐलहुँ ऐ'ठाम,
युक्त सेहो, प्राणी समस्त चाहै मम प्रेम ललाम॥

[३४]

पूर्ण सेहो मनकाम, आब तँ पति-सेवा कर्तव्य,
स्वामी-शुश्रूषा सँ वढ़ि नहि धर्म नारि हित भव्य।
दुष्ट कुरूप दीन रोगी जड़ वा बूढ़ो पति थीक
त्याज्य न प्रमदा हेतु, जार सङ्गम सँ गति नहि ठीक॥

[३५]

एवं हमर कथाक श्रवण—दर्शन कीर्तन आ' ध्यान,
जते भक्ति भाव-प्रद, सन्निधि नहि ततेक ई जान।
तेँ आदेश पालि मम सब क्यो अपन अपन घर जाउ,
कथमपि नहि पूंश्चलीवर्ग—सेवित पद्धति अपनाउ॥

[३६]

सुनि अप्रिय प्रिय-कथा विफलमनकामा वामावर्ग उदास,
श्वास-शुष्क-विम्बाधरयुत मुँह झुका आधि सँ भेलि हताश।
चरणाङ्गुलि सँ भूमि उपर लिखइत कज्जलित नोर झहराय,
कुचकुङ्कुम प्रक्षालित करइत सीदित दुखेँ भेली चुपचाप॥

[३७]

पुनि जनिके हित त्यागल सब किछु, देखि हुनक निर्मम व्यवहार,
दारुण-दुख सँ कातरि' क्रोधेँ आतुरि विषयक पावि विकार।
कनने व्यथित विलोचन दूनू पोछि नोरैल गोपिका-वृन्द,
बाझल कण्ठ तदपि कहुना कऽ बाजय लागलि बात अमन्द॥

[३८]

हे श्रीनाथ! अनाथ एना नहि करी एहि रूपक कहि बात,
जे सर्वस्व तेजि तुअ पदरत, तकरा पर न उचित ई घात।
भक्त सबकेँ बूझि ग्रहण करु, छोड़क योग न सेवक होइछ,
आदि पुरुष जहिना अपना कऽ, मोक्षक साधक केँ सुख दैछ॥

[३९]

हे धर्मज्ञ! पतिक सेवा सन्तानक पालन नारिक धर्म,
कहलहुँ अछि जे अहाँ, कहाँ हम सब न बुझी से उत्तम कर्म।
किन्तु सकल प्राणीक अहीँ छी—आत्मा, सब शास्त्रक सिद्धान्त,
तेजि ताहि नहिएँ बताहि अछि वनक आहि! गोलोकक कान्त!

[४०]

कही—जाह तोँ सब, ऐ' आज्ञा केर अवज्ञा करक न थीक,
किन्तु अहीँ सँ हरितचित्त अछि, पैरो चलि न सकै अछि ठीक।
तेँ तोरे मृदुहास विलोकन गीत-जन्य हिय-दाहक आगि,
अधरामृत सिचि मिझवह, नहि तँ देब एतइ जीवन सब त्यागि॥

[४१]

अपने कहब वियोगजात, जलजात-नयन! जे अनल महान,
निज प्रियपति सँ शमन कराबह, वैद्य तकर जगमे नहि आन।
मुदा वन्यजनप्रिय! अनन्य सौभाग्यक वल सँ छन भरि हेतु
रमा-सेव्य तुअ पद-पङ्कज-रज पावि कोना तजबै जगकेतु!

[४२]

तेँ हे वृजिवंशक दुखहन्ता! तजि घर आङ्गन आ' परिवार,
तुअ सेवाक लगौने आशा योगी जन सम बनि अविकार।
अहिँक सुभग मुसुकान देखि कऽ उत्कट कामक भेलहुँ अधीन,
पदतलगत हमरा सबकेँ बुझि दास्य-कर्म दी परम-प्रवीण!

[४३]

यदपि घरक स्वामित्व तेजि कहवह थिक भल नहि दासी कर्म,
किन्तु बूझि के सकल, न जकरा हिय मे भक्ति भाव केर मर्म।
अपन अपन बुझि लाभ हानि सब अछि करैत जगती मे काज,
जौँ प्रसन्नता देअए गरीबी, व्यर्थे तीनू भुवनक राज॥

[४४]

ई छिरिऐल अलक अञ्चित मुख, लोल-कुण्डलेँ कलित कपोल,
सुधा-धार-आधार-अधर, मधुमय मिश्रित मुसुकान अमोल।
अभयप्रद युगबाहुदण्ड, आ' सिन्धुसुता सँ सेवित वक्ष,
देखि तोर दासी बनलहुँ हम नाथ! अपर तजि कऽ सब लक्ष॥

[४५]

यद्यपि निन्दित औपपत्य, कहलहुँ हमरा सभकेँ श्रीमान,
तदपि अहीँ कहु मुरलिकाक सुनि कऽ मोहक आलाप महान।
आ' ब्रह्माण्ड-ललित तुअ रुचि लखि, तीनू भुवनक के अछि नारि,
जे न पथच्युत होयत, जै सँ—सपुलक खग, मृग, द्रुमो मुरारि !

[४६]

तथा अपर ई कथा विदित, व्रजभीति शमन हित तव अवतार,
जहिना देवलोक केर रक्षा हेतुक आदि पुरुष केँ भार।
तेँ हे आर्तवन्धु ! ऐ' दासी वर्गक कामज्वरेँ नितान्त,
तप्त वक्ष आ' माथ पाणिपङ्कज सँ शीतल करु श्रीकान्त॥

[४७]

मन्मथ-मथित-चित्त गोपी-गण केर कारुणिक सुनि ई बात,
विहसि योगि-जन-सार्वभौम कऽ करुणा आत्माराम उदात।
योगेँ स्तम्भितवीर्य मनहिँ मन मीनकेतनहुँ कऽ आह्वान,
अगणित गोपवधुक क्रीड़ा हित उद्यत होइत भेला भगवान॥

[४८]

प्रियदर्शन-सहास-वदनी तैं' प्रिया मण्डली मध्य गोविन्द,
सरस-हास आ' दशनद्युति सँ कुन्दकान्ति उभिलैत अमन्द।
शोभित होइत भेलाह ताहि छन, जकर योग उपमा साकार,
अगणित नक्षत्रक मण्डल मे कुमुदिनीक पति परम उदार॥

[४९]

सुनइत अपन चरित्रगीत आ' गवइत स्वयं वैजन्तीमाल,
शतशः गोपी वृन्दक स्वामी वन समग्र बनवैत नेहाल।
शुचि शुचि शीतलवालु तरणिजा—तट गत कुमुदसुगन्धि समीर
पाबि गोपवनिताक सङ्ग हरि क्रीड़ित होइत भेला अति धीर॥

[५०]

अवसर जानि पञ्चशर सद्यः धनुष चढ़ा कऽ गोलाकार,
पाँचो शर चलबैत भेला निज गोविन्दक ऊपर साकार।
सकल चराचर भेल हुनक वश, किंन्तु न प्रभुमे विकृतिक लेश,
माया निर्मित जनिक, ताहि पर माया करबे व्यर्थ उदेश॥

[५१]

और मदनकेँ अवसर देबक हेतु श्याम गोपीगण केर,
कुच कपोल कच नीवि परसि नखछत आलिङ्गन कऽ कै बेर।
राखल अविकृत भाव गोपवनिताक चित्त उद्दीप्त करैत,
तदपि काम नहि हँटै, हारिओ कऽ खल अछि खलता न तजैत॥

[५२]

हरिकृत ई सम्मान पाबि कऽ
सकल गोपवनिता अभिमान—
कैल मनेमन एक अपर सँ
बुझइत अपना बढ़लि महान।
विभु से जानि रूपमद खण्डन—
हित तैं' सभक अपन साकार,
श्रीराधाक सहित अन्तर्हित
कैलनि, लीला जनिक अपार॥

—:o:—

न
व
म
स
र्ग

[१]

एकाएक अदृश्य होइत भगवानक, व्रजबनिता तैं काल,
चारू दिश लखि पावि कतहु नहि, निर्दिश सदृश ठोकि निज भाल।
परम विश्राकुलि भऽ हुनके सन चालि हास गप आदि करैत,
हमहिं कृष्ण सबसँ सव बाजै, हुनके लीला स्वाङ्ग गढ़ैत॥

[२]

तार-स्वरेँ बताहि जकाँ गबइत पुनि वन मे खोज करैत,
सबमे आत्मा हुनक जानि तरु लतिकादिक सँ छली पुछैत।
हे पीपर ! पाकड़ि ! वट ! कहु कहु, देखल नन्दक सुत अभिराम,
जोड़ि पिरीति, हरण हिय कऽ चल गेल तेज़ि हमरा ऐ'ठाम॥

[३]

पनस प्रियाल रसाल आदि यमुना तट वासी हे द्रुमराजि,
परहित जन्म ग्रहण कऽ, हरिक उदेश किऐ न कहै छी बाजि।
धरा ! कहह नहि किऐ कहाँ पहु ? तोर परम प्रिय नन्दक जात,
परसि जनिक पद पुलकाञ्चित छौ औखन व्यक्त सकल तव गात॥

[४]

नारिक गति थिक नारि जानि सखि मृगी ! कहह तोहीं घनश्याम
तोहर लग की कोनो प्रियायुत ऐल छला निर्जितशतकाम।
रति-रत-रमणी-कुच-कुङ्कुम-तर जनिक कुन्दमालाक सुवास,
साक्षी बनि कहि रहल एहि ठाँ ऐल अवश्य छलै मृदुहास॥

[५]

धृत-मृदु-तुलसि-लसित, मदमातल—मधुकर-मण्डल-मण्डितभेल,
प्रिया-स्कन्ध पर दऽ भुज पङ्कज-कर प्रेमें देखइत अछि गेल।
अमित प्रभाव हुनक तेँ हियमे भक्ति भाव भरि भरि वन केर,
करै प्रणाम महीरुहमण्डल, औखन धरि हे सखिगण! हेर॥

[६]

ता' क्यो वाजि उठल हे सखिजन! एहि लता सब सँ पुछि लैह,
कहाँ हमर अरविन्दनयन—गोविन्द, अवश्ये जनइछ येह।
तरुण-तरुक भुज समालिङ्गितो तनिक तनुक नख केर पा' स्पर्श,
देखह पुलकाञ्चित-तनु एखनहुँ कऽ रहले घोषित चितहर्ष॥

[७]

ऐ' रूपेँ विक्षिप्त जकाँ बजइत पुछइत सब सँ सब ठाम,
कृष्णक तकबा मे अति विह्वलि तनिके मे तल्लीन निकाम।
व्रज बसि जे जे नाटक कैलनि श्रीहरि तकरे गोपीवृन्द,
पूर्णतया अनुकरण करै लागलि वियोग मे भसलि अमन्द॥

[८]

पूतचरित्रा रहितहुँ क्यो राक्षसी-पूतना केर धऽ रूप,
नन्दक पूत बनलि गोपी केँ पान करौल उरोज अनूप।
शिशुबनि कनइत क्यो शकटाकृति--वाला पर कैलक पदघात,
तृणावर्त बनि बालकृष्ण बुझि क्यो ककरहु हरलक साक्षात॥

[९]

अहिना हरिकृत खेल सुसंस्कृत ढंगेँ सकल करैत रसाल
तथा पुछैत कहाँ मम प्रियतम? तरुलतिका सँ, बनलि बेहाल।
घुमइत सौँसे बृन्दावन मे कोनो ठाम गोपी समुदाय,
चक्रपाणि केर चरण-चिह्न केँ होइत चमत्कृत देखल जाय॥

[१०]

तथा कैल विश्वास सकल जन चिह्नो हुनके पैरक थीक,
वज्राङ्कुश यव कमल ध्वजादिक देखि हुनक चरणक सम ठीक
पकड़ि ताहि चिह्नित पद सब केँ पहुक पता लगबैक निमित्त,
आगू बढि पद वधुक मिलित लखि बाजय लागलि पीड़ित चित्त ॥

[११]

हरिक संग केहरि–कटि के अछि गेलि, जकर पदचिह्न प्रतच्छ,
निश्चय से अपनौल कान्ह केँ, जैँ तजि गोपी लच्छक लच्छ।
ओकरे धऽ ऐला एकान्त मे, धन्य ताहि रमणी केर भाग,
जे एकाधिपत्य पौलक अछि गोलोकाधिपतिक अनुराग ॥

[१२]

अहह ! देखह बाजलि क्यो, ऐ' ठाँ प्रिया हेतु लोढ़ल प्रिय फूल,
बैसि एतै कच बान्हि कामिनिक क्रीड़ा कैलनि दऽ मोहि शूल ।
झड़ल सुमन, तृण घास दवल, आ' अङ्गराग–सौरभित–बसात,
तथा एक दू टूटल लट दऽ रहल गवाही अछि साक्षात ॥

[१३]

एहि प्रकार कहैत आगु सब बढ़लि, ओम्हर जनिका कऽ सङ्ग,
ऐल छला श्रीनाथ, पूर्ण से पावि गर्व आ' परम उमङ्ग ।
कहइत भेली न हो चलि हमरा, लऽ चलु रमै जतऽ मन नाथ !
कहल कान्ह सुनि, आउ कान्ह पर आ' भऽ गेला लुप्त व्रजनाथ ॥

[१४]

अन्तर्हित होइतैहँ हरिक, ओ नाथ ! कहाँ प्रियतम घनश्याम,
आबि निकट दासी केँ दर्शन दैह कहैत, विलाप प्रकाम ।
करइत भेली, दूर सँ सुनिपुनि प्रभुकेँ तकइत गोपीवृन्द,
अति चञ्चलि पहुँचलि आ' देखलि हरि विरहेँ दुःखिनी अमन्द ॥

[१५]

भोगि रहलि छथि मानक फल त्रिभुवनस्वामी केर कऽ अपमान,
आश्चर्यित हुनि सङ्ग बढ़लि सब या' धरि चन्द्रक ह्रास महान।
सघन विपिन मे घनतम तम लखि पुनि घुरली हुनके मे लीन,
हुनके चर्च करैत गाबि गुण अपर सकल बिसरलि अति दीन॥

[१६]

अस्तव्यस्तदुकूल फेर सब कालिन्दीक कूल पर आबि,
करइत चिन्तन परम चिरन्तन केर मिलित स्वर सँ गुणगाबि।
औता कखन हमर हृदयेश्वर एहि भाव सँ भरलि नितान्त,
श्रुतिसङ्गीत चरित्रगीत श्रीकृष्णक गौल सतृष्णस्वान्त॥

[१७]

हे लक्ष्मीपति! पतितोद्धारक! तुअ उत्पत्ति सँ ई व्रजभूमि,
विजयी अवनि मध्य बनि रहले सतत सकल सौभाग्यें झूमि।
देखह मुदा दहोदिशि तोहर तुअ अधीन कऽ अप्पन प्राण,
तोरे तकइत व्याकुल कुल अछि गोकुल केर ललना म्रियमाण॥

[१८]

शरद-सरोवर-समुत्पन्न फुट-शतदल-शोभा सँ सम्पन्न,
तव ललाम-लोचनें सतत बिनु दामक दासी भऽ कऽ धन्न।
ताही गोपवधूटी कें वरदायक! सता लैह जे जान,
की से धर्मशास्त्र सँ हत्या नहि कहौत हे ज्ञाननिधान!॥

[१९]

कालिय-कालकूट सँ कलुषित कालिन्दिक विनाशकृत वारि,
व्याल बनल राक्षस, वासवकृत—वर्षण आदिक भयें मुरारि।
वारंवार सुरक्षित अपनहिँ हमरा सब कें राखल देव!
निर्मोही बनि सम्प्रति मोहन! थिक न उचित, नहि दर्शन देव॥

[२०]

अहाँ न केवल हे बलबान्धव ! पुत्र थिकौहँ यशोदा केर,
घट घट वासी छी अविनाशी, अछि श्रुतिसिद्ध प्रमाणक ढेर।
स्वयं पितामह सँ प्रार्थित भऽ सकल सृष्टि केर रक्षा हेतु,
जन्म लेल अछि यदुकुल मे, तैँ नहि तोड़क थिक पालन-केतु॥

[२१]

वृष्णि-वंश-उन्नायक सकले ब्रह्माण्डक नायक श्रीनाथ !
भव-भय सँ सम्प्राप्त आप्त—अभयप्रद-श्रीमच्चरण अनाथ—
बनलि, कान्त ! पद्मा-कर-ग्राहक अपन प्रफुल्ल पद्म सन हाथ,
हमरा सभक माथ पर कामद कृपया राखि बनाउ सनाथ॥

[२२]

व्रजनिवासि-पीड़ा - पर्वत - पवि ! भक्त-मानहर-मधुमय-हास,
वीरधुरीण ! परम प्रियतम हे ! चरणक अपन सेविका खास।
रमणी लोकनिक उपर कनिक कऽ दया दयाक पूर्ण भण्डार !
देखा सौम्य-सरसीरुह-आनन, आन न बुझि कऽ करु स्वीकार॥

[२३]

प्रणत-प्राणि-पातक विध्वंसक, धेनुक अनुगामी सदिकाल,
सिन्धु-सुताक सदन, फणि-फणकेँ—अर्पित जे पद-पद्म रसाल।
से व्रज-वाल—वधूक विपुल—वक्षोज उपर वंशीधर ! राखि,
हृदयक वेदन वेद नमस्कृत हरह निवेदन-रस केँ चाखि॥

[२४]

वारिज-वन्द्य-विलोचन ! तोहर विबुध,वृन्द-रुचि-रुचिर नितान्त,
मधुर मञ्जु वाणी सँ मोहित एहि सेविका गण केँ कान्त !
वीर-वर्ग-वन्दित ! अधरामृत पान करा कऽ अपन रसाल,
करुणाकर ! कृतकृत्य बना सम्पुष्ट करह हे धृत वनमाल !

[२५]

भव-भय-ताप-तप्त-हित-जीवन, कविकुल-कीर्तित पातकहारि
सुनलो सँ साक्षात शिवप्रद श्रीसमलङ्कृत सृष्टि-विहारि।
तोर पवित्र-कथा-पीयूषक पान करै जे से थिक धन्य,
प्राणो पद पर अरपि विश्राकुलि हम सब, की ई थिक सौजन्य ॥

[२६]

प्रियतम ! तोहरहास, पिरीति—पुरस्सर देखब तथा विहार—
केर ध्यान मात्रो करैत ककरा नहि हो कल्याण उदार !
तदपि एकान्तक हृदयस्पर्शी जे विनोदमय गपसप नाथ !
से मानस कें मथि मथि सकपट ! बना रहल अछि एखन अनाथ ॥

[२७]

बनि चरवाह जखन व्रज सँ पहु ! पशु चरबैत चलह वन नाथ।
कमल-कान्त तव पद तृण अङ्कुर कङ्कर पीड़ित बुझि धऽ माथ।
खेद ततेक करी हम सब लखि मन बनि जाय विकल तै काल,
तोँ मोहन किछु मोह न हियमे, जैँ न करह अबलो पर ख्याल ॥

[२८]

सन्ध्या समय सर्वदा केशव ! श्यामल कुञ्चित केश-कलाप—
मिलित-मञ्जु-मुखमण्डल अप्पन मधुकर-मण्डित कञ्जहुँ ताप—
दायक धूलि धूसरित रहितहुँ गाय चराय चराचर नाथ !
घुरि घर अबइत देखा देखा मन मदन-सदन कऽ करह सनाथ ॥

[२९]

प्रणत-कामना-पूरक, पङ्कज—पुत्री सँ पूजित सदिकाल,
भव-भवनक भूषण भविष्णु, आपत्तिक छन मे ध्येय रसाल।
कल्याणक कारण प्रधान, सब आधि व्याधि उन्मूलनकारि,
हमरा सभक उरोज उपर अरपिय पद-पुण्डरीक मनहारि ॥

[३०]

रति-रञ्जक, दुख-दलन, अपर सब रागकेर, विस्मारक रूप,
मञ्जु रणित मुरली सँ चुम्बित हमरा लोकनिक हेतु अनूप।
अपन अधर केर सुधा वीर हे! करह कृपा कऽ वितरण आज,
तेजि तोर पद-पङ्कीरुह नहि चाही स्वर्ग मोक्ष वा राज॥

[३१]

घुमह जखन वन महँ पहु! दिन मे, बिना तोहि देखने घनश्याम!
युग सम आधो घड़ी विताबी, नीक न लागै तन, धन, धाम।
तुअ घुँघराल-बाल सँ मण्डित लक्ष्मी-लसित वदन अभिराम,
देखइत लोचन केँ पल दऽ विधि मूढ़ समान भेला बदनाम॥

[३२]

भाइ बन्धु पति पुत्र सकल सम्बन्ध बन्ध मर्यादा तोड़ि,
अन्तर्यामि-अहीँक गीतमे मुग्ध भेल मानस केँ बोरि।
ऐलहुँ हम गोपी-समाज निर्व्याज-हृदय लऽ कपटी-नाथ!
अहह! कहह के निशिमे आगत रमणीकेँ तजि करत अनाथ॥

[३३]

विस्तृत-वक्ष-शोभि अपने केर एकान्तक आलाप ललाम,
उत्कण्ठाक समुद्दीपक—आनन सहास, प्रेमेँ अभिराम—
बनल विलोकन तथा तेज लखि प्रकट समुत्कट हो अभिलाख,
एवं मानस हो मोहित अति, कहि रहलहुँ तजि लज्जा धाख॥

[३४]

हे प्रिय! आविर्भाव अहाँ केर व्रजवासिक दुख हरक निमित्त,
तथा समस्त महीमण्डल केँ मङ्गलदायक विश्रुत नित्त।
तेँ तोरे मे आत्म-समर्पित दत्तहृदय निज जनकेँ ईश!
पीड़ा देब प्रथा केँ छोड़ह कने, झुकाय कही हम शीश॥

[३५]

जे तुश्र सरस–चरण–सरसीरुह निज कर्कश-कुच पर भऽ भीत,
नहुँ नहुँ धारण करी कोनहुँना, ताहि चरण सँ हे प्रियमीत !
भ्रमण करह वनमे, की कण्टक आदिक गड़ि नहि दुख छौ दैत,
प्राणनाथ ! ई देखि देखि तँ मति अछि हमरा सभक घुमैत ॥

[३६]

एहि प्रकार विकार हीन मन राधाप्रभृति गोपिका-वृन्द,
दामोदरक देखैक हेतुएँ अभिलाषा हिय राखि अमन्द ।
गीत गवैत अनेक रूप केर एवं करइत विविध प्रलाप,
सुन्दर-स्वर-लहरी सँ संयुत घाना सदृशे कैल विलाप ॥

[३७]

व्रजवनिताक यथार्थ भक्तिकेर, भव्य-भाव सँ वश भगवान,
मन्द मन्द हसइत मनमोहन मञ्जु-हारधारी श्रीमान ।
ताहि मण्डली मध्य मुदित मन मन्मथ मथन हेतु साकार
आविर्भूत भेलाह थिका जे निखिल भूत-वर्गक आधार ॥

[३८]

पलटि प्राप्त पुनि प्राण समाने आगत प्रियतम कें तै' काल,
पबितहिँ प्रीति-पटल–पुष्पित—लोचनी सकल-प्रमदा शुचिभाल ।
एके बेरि उठल सब, क्यो कर—कञ्ज हरिक दुहु हाथेँ धैल,
चन्दन-चर्चित बाहिँ तनिक क्यो लऽ कऽ अप्पन कान्ह चढ़ैल ॥

[३९]

कोनो कोमलाङ्गी श्रीकृष्णक खैलक जे मुख पान पुरान,
धैल अपन अञ्जलि मे तकरा, क्यो पद–कमल तनिक अम्लान ।
विरह-वह्नि सँ भेलि विदग्धा कुच युग उपर चढ़ा चट लेल,
भौँह चढ़ा निज काटि अधर क्यो विद्ध नयन–शरसँ कऽ देल ॥

[४०]

निर्निमेष नयनें क्यो प्रीता—तनिके वारिज-वदन रसाल,
नीक जकाँ देखितौहँ तृप्त नहि हरि पद लखि जनु साधुक हाल।
नयन-रन्ध्रसँ अपरा पुनि क्यो हियमे प्रभु-प्रतिमा कें आनि,
मुका नेत्र मुनि पुलकित योगी जकाँ पौल आनन्दक खानि॥

[४१]

सब क्यो दीन-दयालु देवकी—नन्दन-दर्शन-जन्य महान—
उत्सव सँ सुख पावि परम, विसरल वियोग दुख पुलकित प्राण।
जहिना विषय-व्यथाक वह्नि सँ विकल जीव भाग्योदय-जन्य
सन्त-समागम-मोद प्राप्त कऽ ताप-मुक्ति सँ बनै अनन्य॥

[४२]

ताहि ठाम श्रीकृष्ण विगत दुख गोपीगण सँ वेष्टित भेल,
मूर्त-समस्त-शक्तिसँ आवृत पुरुषें ठीक तुलित भऽ गेल।
ताहि सबहिँ कें लऽ पुनि माधव झट ऐला कालिन्दी कूल,
सुरभित जतै समीर, झुमै अलि लहि मन्दार कुन्द फुट फूल॥

[४३]

एवं शारद-शशिक किरण सँ ध्वस्त यामिनी-तम जैंठाम,
तथा शिवप्रद यामुन-तरल—तरङ्ग-पूत सिकता अभिराम।
ततै पाँव हरि मुदितमना सब कुचकुङ्कुम सँ अङ्कित भेल,
प्रियतम कें वैसक हित निज निज उत्तरीय आसन दऽ देल॥

[४४]

योगीजनक हृदय आसन पर वैसल रहथि सतत जे श्याम,
गोप-वधूटी-मण्डलस्थ त्रिभुवन-लक्ष्मीक लसित अभिराम।
धारण कऽ शरीर, तैं ऊपर अर्चित भऽ से बैसि गेलाह,
ताहि छनक शोभा केर वर्णन शारद शेष न कऽ सकलाह॥

[४५]

निखिल विश्व दीपक, मन्मथ—उद्दीपक तनिका गोपीवृन्द,
फुदकबैत लोचन-खञ्जन केँ स्तुति सँ कऽ सम्मान अमन्द।
आ' भ्रू कऽ सविलास, हास उल्लास भरलि किछु करइत रोष,
कोर कैल परसैत्त पाणि पद कहल प्रगट करइत हुनि दोष॥

[४६]

प्रेम पावि ककरो क्यो प्रेमी प्रकटित अपन करैछ पिरीति,
बिना सिनेह-सुधा पीनहुँ क्यो पालि रहल अछि नेहक नीति।
क्यो अछि तेहन, प्रीति जकरा सँ करु किंवा नहि, घुरि न तकैछ,
कहु जगदीश! जगत लीला ई बुझा, बुद्धि नहि काज करैछ॥

[४७]

सुनि आक्षेप-पूर्ण गप गोपिक कहल कृष्ण सुनु सखि-समुदाय!
पारस्परिक प्रेम स्वार्थक वश धर्ममित्रताहीन कहाय।
एकदिशाह वात्सल्य विवश सन्तति पर जननी जनकक नेह,
शुद्ध धर्म आ' सहज प्रीति तैं' मे चाही बुझबाक सदेह॥

[४८]

क्यो तँ, करु सिनेह वा नहि करु, नहि देखौत ओ प्रेमक भाव,
से थिक परमहंस, जकरां पर नहि पड़ैछ मायाक प्रभाव।
वा भोगेच्छा पूर्ण व्यक्ति से, किंवा बुझी कृतघ्ने थीक,
अथवा गुरुजन केर द्रोही से कुलिश-कठोर हृदय सँ ठीक॥

[४९]

हम, करितौहँ प्रेम प्राणी केँ नहि देखबै' छी अपन पिरीति,
लागल रहौ सतत हमरे मे ई विचारि राखी से रीति।
संगृहीत धन नष्ट होइतं, तैं' चित्तेँ जहिना निर्धन लोक
गत-धन तेजि और नहि देखै, भक्तो तहिना मम आलोक॥

[५०]

हमर प्राप्ति हित लोक वेद सम्बन्ध सहित तजि तजि सब वाम
ऐलहुँ अहाँ लोकनि हमहूँ तेँ दैक हेतु सायुज्य ललाम।
अहाँ सभक चित एकनिष्ठ हमरे मे हो से पूर्ण विचारि,
अवसर देल होइत अन्तर्हित, व्यर्थ दोष नहि दी सुकुमारि!

[५१]

तोरा सभक एकान्त भक्ति आ' एकनिष्ठ आराधन सोर,
बदला जकर देब मम शक्ति न अगणित वर्षहुँ मे सखि! तोर।
जे अकाट्य माया-बन्धन केँ तोड़ि अहाँ सभ मम पद धैल,
सुकृति अहीँ सभ केर तकर फल दिऔ जन्म जन्मक जे कैल॥

[५२]

कऽ श्रुतिविषय श्रुतिक सम्प्रार्थित श्रीनिवास केर एहि प्रकार
कोमल कथन प्रीति-पाटव सँ पाटल पावन रहित विकार।
तजल गोपबालाक वृन्द वेदना वियोगजन्य तत्काल,
तथा पाबि कऽ शुभ आशिष आशिख रोमाञ्चित भेलि नेहाल॥

[५३

तखन ताहि ठाँ तुरते माधव ताहि दिव्य रमणीगण सङ्ग,
अनुगामिनी प्राण सँ जे प्रेमक पुत्तलि सब पौल उसङ्ग।
तथा परस्पर बाहु-वल्लरी छैक जकर आवद्ध ललाम,
समारम्भ रस रासक कैलनि क्रीड़ा-कुतुक-निपुण घनश्याम॥

[५४]

दुइ दुइ ताहि गोपवनिता केर मध्य योगबल सँ हरि एक,
भऽ प्रविष्ट त्रिभुवन विशिष्ट, भिन्नता भान नहि जनिक कनेक।
पार्श्ववर्तिनी सकल युग्म केर ग्रीवा उपर अपन भुज राखि,
क्रीड़ा करथि, बुझय सब मनमे, हमरे लग प्रभु छथि रस चाखि॥

[५५]

अति अनुपम ई दृश्य देखै लै लऽ लऽ अपन अनन्त विमान,
स्त्रीक सहित सुर सकल व्योम सँ होइत समुत्सुक अति छविमान।
वर्षा फूलक कैल मुदित दुन्दुभी आदि बाजा बजबैत,
तथा उदार दारयुत गन्धर्वक-पति छल हुनि सुयश गबैत॥

[५६]

रस-परवश सब रमणिक नूपुर वलय किङ्किणी केर महान
दशदिग्व्यापी मनमोहक रव रासक क्रीड़ा मे श्रुयमाण!
ततै गोरि तै गोपी-गण-गत दृश्य ताहि रूपैँ गोविन्द,
हैम-मणिक मण्डल मे जहिना महामारकत प्रभा अमन्द॥

[५७]

चरण-सञ्चरण, बाहुप्रसारण, मृदुल हासयुत भौहँ विलास,
दुलित ललित कटि, चञ्चल कुच पट, लोल-कुण्डलो सँ सोल्लास।
स्वेद-सिक्त-मुख हरिक वधू-गण कबरी - काञ्ची - बन्धनहीन
गबइत हुनि यश शोभित, जहिना मेघचक्रमे बिजुरिक सीन॥

[५८]

नाना राग रागिणी सँ अनुरञ्जित - कण्ठवती सब वाम
हरिक पाबि संस्पर्श मुदितमन नर्तन करइत परम ललाम।
रतिरस प्रिया गौल उच्चस्वर गीत जाहि सँ विश्व समस्त,
भेल व्याप्त पर्याप्त, तथा के श्रोता भेल न हो जे मस्त॥

[५९]

क्यो षड्जादिक स्वरालाप गति असङ्कीर्ण रूपैँ हरि सङ्ग
तारस्वरैँ अलापि प्रशंसित भऽ हुनके सँ पाबि उमङ्ग।
ध्रुवमे पुनः अलापल, करइत तनिक पूर्ण रूपैँ सम्मान,
शिथिल-वलय - मल्लिका थाकि क्यो गलबहिएँ पूजल भगवान॥

[६०]

स्कन्धस्थित शतदल सँ सुरभित पहुक बाँहि क्यो चन्दन लिप्त,
कऽ आघ्राण, होइत रोमाञ्चित चूमि चन्द्र वदनी भेलि तृप्त।
नाट्य-क्षण-सञ्चालित-कुण्डल—कान्ति-कलित कमनीय कपोल
रखइत गाल उपर ककरहु हरि देल पान चर्वित अनमोल॥

[६१]

क्यो झनकाय मेखला आ' नूपुर केँ, नाच करैत गबैत—
थाकलि, पार्श्ववर्ति-श्रीकृष्णक पाणि-पद्म छल वक्ष धरैत।
सकल गोपिका एहि प्रकारेँ प्रिय एकान्त श्रीशकेँ पाबि,
गलबहिआँ दऽ कैल विविध क्रीड़ा कौतुक हुनि गुणगण गाबि॥

[६२]

कर्णालंकृत-कञ्ज, ललित-लट-युत-कपोलथित स्वेद-सनाथ—
वदन शोभिता, निपतित केशस्थित माला श्रीकृष्णक साथ।
गोप बालिका लोकनि रास-मण्डल मे नृत्य कैल अभिराम,
गुन गुन गुन गुन गायक बनि अलि गीत जाहि मे गौल ललाम॥

[६३]

एहि प्रकारेँ आलिङ्गन करपीड़न अवलोकन सस्नेह
मुक्त विलास हास सँ व्रज—बनिताक सङ्ग श्रीनाथ सदेह।
रमित भेलाह अपरिमित काम-कला-कोविद जहिना की बाल,
अपने छाया केर सङ्ग क्रीड़ा कौतुककऽ करै नेहाल॥

[६४]

जते गोपिका तते कृष्ण बनि आत्माराम स्वयं भगवान
सब केँ तुष्ट कैल रमि, जे लखि मुग्ध खेचरीगण केर प्राण।
एवं गणसमेत विधु विस्मित देखि प्रभुक भोगहुँ मे योग,
जैं रति-रत रहितहुँ मोहन पर कामक सबटा विफल प्रयोग॥

[६५]

श्रान्त सकल सुमुखीक श्रमक वारण हित पुनि यमुना जल जाय,
जल-क्रीड़ा कऽ सभक सङ्ग निःसङ्ग मनोरथ मनक पुराय।
वैमानिक सुरगण सँ उपहृत पुष्पेँ पूजित जगन्निवास,
रुद्धवीर्य सविलास रास कऽ पूरल गोपी लोकनिक आश॥

[६६]

होइतहिँ अहल भोर सब बनिता हरि सँ अनुमोदित घर गेलि,
माय बाप पति वान्धव जन सँ निशि भरि घरहिँ दृष्ट जे भेलि।
की आश्चर्य, सकल आश्चर्यक कर्त्ता घट घट मे जे व्याप्त
सब सम्भव तनिका सँ वेदो कहि रहले जनिका पर्याप्त॥

[६७]

माथक मोल ओम्हर मन्मथ बुझि नतमस्तक धनु तजि कर जोड़ि
स्तुति कऽ कते कमलनयनक पदपङ्कज पर तन केँ देल ओड़ि।
भऽ परास्त शरणागत बुझि हरि उठा मदन केँ हृदय लगौल,
देखि दृश्य देवतावृन्द दुन्दुभी बजा कऽ प्रभु यश गौल॥

[६८]

पुनि पीताम्बर पाणि-पद्म निज काम-पीठ पर दैत सहास,
कहइत भेला, अखर्व गर्व नहि फेर करब करइत मम त्रास।
औरो अछि उपदेश बहुत देबाक, ताहि हित हमरे जात,
हैव अहाँ रुक्मिणी उदर सँ नवलगात प्रद्युम्ने ख्यात॥

[६९]

तही शरीरेँ अपर-देहधृत—रति-रक्षित शिक्षित भऽ धीर!
शम्बर मारि हुनक सङ्गहिँ पुनि दूर करब माइक दृग्नीर।
पा' वरदान दानवध्वंसी प्रभुक देल पुलकित चित काम,
पद-पङ्कज-रज हुनक भालमे लगा समधु चलला निज धाम॥

[७०]

मन्मथ-मान-मथन गगनस्थित देखि मगन सुरमुनि तहँ आबि,
प्रणतभेल कहइत भेलाह हरि सँ हुनि गुण-गण-गौरव गाबि।
देखल 'विमुक्त खल-निग्रह आ' पूर्ण अनुग्रह कऽ पुनि नाथ !
एहेन अनन्यलभ्य इच्छित वर दऽ तकरे जे कैल सनाथ॥

[७१]

आब हमर प्रेरित खल-कंसक प्रेषित झट औता अक्रूर,
हुनक सङ्ग मथुरा दुहु बान्धव जा कऽ करबे धरा अक्रूर।
एतै समाप्त प्राय काज, अवशिष्ट अशिष्ट निशाचर थोड़,
ता' तुअ करँ हैत हत या' धरि छी गोकुल मे नन्दकिशोर !

[७२]

ई कहि विधिनन्दन कऽ पदवन्दन
भक्त्या वन्दनयन ज्ञानी,
जोड़ल युग पाणी स्तम्भित वाणी,
बुझि रुचि सारङ्गपाणी।
कैलनि अनुमोदन खल अपनोदन
केर, फेरि शिर हाथे,
कृतकृत्य मुनीशो जय जगदीशो
कहि चललाह सनाथे॥

—:o:—

द स म स र्ग

[१]

पुनि हरि लोक-अहित अहि-तनुसँ कऽ श्रीसुदर्शनक उद्धार,
शंखचूड़ वृषभासुर आदिक तुरत करैत भेला संहार।
जे सुनि नारद मुहेँ सुनिश्चित, तथा बूझि वसुदेवक बाल
रामकृष्ण दुहु बान्धव नन्दक घरमे रक्षित, कंस कराल॥

[२]

मसि सन दुपहरिआ तामसि महँ लेल शाल-तरु-भुज तरुआरि,
देवक रिपु, वसुदेवक मारक हेतु क्रोधसँ आँखि गुराड़ि।
रोकल कलबल बुझा ब्रह्मसुत मृत्यु रामकृष्णे सँ तोर,
हिनका मारह किऐ, खेत खै-महिसि चुरी पड़रुक मुहँ ठोर!

[३]

देवर्षिक यात्रा करैत कहि, क्रुद्ध करैत जकाँ फुफुकार—
करइत लोहपाश सँ वन्हबा देवकि वसुदेवहुँ सविकार।
दुहु बान्धवकेँ अन्त करह जा' कहि केशीकेँ अन्तक लोक
जैबा हेतु पठाओल गोकुल, तखन बजा कुल योद्धालोक॥

[४]

कहइत भेल सुनह मुष्टिक चाणुर शल तोशलकादिक वीर,
आ' मन्त्रीमण्डली तथा फिलवान जतेक हमर छह वीर।
हमर मृत्यु केर कारण हमरे-भागिन वसुदेवक दू बाल,
रामकृष्ण सँ ख्यात नन्द सँ पालित व्रजमे अछि विकराल॥

[५]

चतुर्दशी कऽ तेँ कऽ रहलहुँ धनषयज्ञ हम विरचि प्रपञ्च,
कुस्ती हेतु वनौ फलका आ' दर्शक जन हित बहुतो मञ्च।
औत हकारल दुनू गोटे, हस्तिप! तोँ हाथी हुला तुरन्त,
रङ्गभूमि केर सिंह द्वारिए पर अलगट्टे करिहन्हु अन्त॥

[६]

जौं बचि जाय ताहि सँ मुष्टिक! चाणुर! दुनू मल्ल ललकारि,
वा पुचकारि लपटि पटिया कऽ करिहह युग रिपु नाश पछारि।
दऽ कऽ ई आदेश बजा अक्रूर केँ लैत हाथ मे हाथ,
कहइत भेल उग्रसेनक सुत, बुझि कृत्रिम सम्मान सनाथ॥

[७]

हे हे दानाध्यक्ष! करिय ई अपने! अपने बुझि उपकार,
भोज वृष्णि कुलमे न अहाँ सन हित क्यो दोसर हमर उदार!
तेँ अविलम्ब अहिंक अवलम्बन कैलहुँ काजक साधन जानि,
सङ्कटवश हरि निकट इन्द्र जहिना उपगत स्वार्थक हित मानि॥

[८]

कालिह जाय व्रज, नन्दक पालित जे वसुदेवक दूनू बाल
तकरा दऽ हकार मख देखक रथ सँ लाउ समुन्नत-भाल!
ताही दुहुक हाथ सँ हम्मर-मरण देववाणिक अनुसार,
तेँ युग बन्धु सहित नन्दादिक आवथि लऽ सङ्गहिं उपहार॥

[९]

अविते एतै दुहूकेँ पीचत काले सनक कुवलयापीड़,
तैं' सँ बचि गेने जवान सबसँ हत हैत छनहिं मे धीर!
तकर बाद वसुदेव प्रभृति-यदुवंशिक शीघ्र करब संहार,
बूढ़ राज्य लोभी बापहुँ केँ हति, उपभोगब धरा उदार॥

[१०]

बना, ससुर मगधेश, सिनेही द्विविद नरक शम्बर आ' बाण,
एहि सभक सङ्गें सुरपत्नी कें हति भोगब राज्य महान।
ई सङ्कल्प हमर बुझि जल्दी लाउ दूनू बालक कें जाय,
धनुष-यज्ञ आ' मथुरा नगरिक शोभा बढ़िञा जकाँ सुनाय॥

[११]

सुनि अक्रूर क्रूर कंसक गप कहइत भेला सुनू भूपाल!
मरण केर दुर्गम-रणसँ वचबाक हेतु जे दूनू बाल-
कें विध्वंस करक सोचल अछि, यद्यपि उत्तम, किन्तु अदृष्टि
एहि सृष्टिमे सफलताक वा असफलताक करै नित सृष्टि॥

[१२]

जीवन-पथमे उच्च मनोरथ-रथ हाँकै हतभाग्यो लोक,
मुदा उदास प्रसन्न हैब वा नियतिक हाथ, करत के रोक?
बुझितहुँ से आज्ञाक अवज्ञा करब कोना या' धरि अछि प्राण,
सुनि ओ कैलक सभा विसर्जित, पुनि, दुहु जन गृह कैल प्रयाण॥

[१३]

ओम्हर कुटिल-कंसक प्रेषित केशी आ' व्योमासुर कें श्याम,
मारि, देव किन्नर सँ वर्षित पुष्पें पूजित भेला प्रकाम।
एम्हर गान्दिनीतनय भोर होइतहि नय कोविद विदा भेलाह,
रथ चढ़ि गोकुल, जनिक नयन-पथ मे हरि भक्तिक करै प्रवाह॥

[१४]

करथि विचार मने मन, की हम कैल आचरण जप तप याग-
चार बनल जैं प्रभु-पद-पङ्कज देखब जाय सहित अनुराग।
सफल जन्म मम, सकल अमङ्गल ध्वस्त भेल जैं योगिध्यात-
गोपीपति-पद-पङ्कीरुह पर प्रणत हैब लहि सुख साक्षात॥

[१५]

कैलक कृपा कुकर्मी कंसो, जे तैं' पाद – पद्म – मकरन्द–
पान करक हित दूत बना कऽ उपकृत आइ बनौल असन्द।
जे अवतीर्ण हरिक पद-नख-द्युति तमसावृत जग सँ भट पार
अम्बरीष प्रभृतिक कैने अछि, साक्षी आगम निगम अपार॥

[१६]

सविधि सविधि भव सुरगण लक्ष्मी आ' मुनिगण पूजित सदिकाल,
गोचर गो चरवाह–चरण अनुचर-सेवित जे परम रसाल।
भ्रमण करय श्रीवृन्दावनमे व्रजवालाक विपुल - वक्षोज–
मण्डन - केसरिधूलि - धूसरित से देखब जनु अलि अम्भोज॥

[१७]

सुभग कपोल नाक, सस्मित–अवलोकन, रक्त सरोज समान-
लोचन-लसित, कुटिल–कच-सङ्कुल हरिमुख ध्रुव देखब हो भान।
व्यक्त तकर कारण देखैत छी, हरदम हाँजक हाँज हरीन,
करै प्रदक्षिण हमर रथक, शुभ-शकुन नीक फल केर अधीन॥

[१८]

भूमिक भार उतारबाक हित स्वच्छाधृत – मानुषक सरूप,
जौं सौन्दर्य-सदन श्रीविष्णुक दर्शन होयत आइ अनूप।
नयन-प्राप्तकेर शीघ्र सकल फल नहि हमरा भेटत ई बात,
कहि नहि सकते क्यो जगतीमे, सकल-दृश्य जैं पहु सँ मात॥

[१९]

वर्णाश्रम - रक्षक सुखवृन्दक सुखदाता जे लऽ अवतार-
यदुकुलमे, यश विपुल एखन विस्तृत करैछ व्रजमध्य उदार।
देव यक्ष किन्नर मुनि गायक बनि जनिकर गुण रहले गाबि,
धन्य धन्य हम आइ बनब गोकुलमे तनिके दर्शन पाबि॥

[२०]

देखि रुचिर सुचि उतरि यान सँ दुहु बन्धुक योगी सँ ध्यात
चरण तथा से शरण जकर तै' गोप-वृन्दहुँक पद प्रख्यात।
पकड़ि प्रणत होइतहिँ प्रभु शिर पर दऽ अभयप्रद पाणि-पयोज,
काल-कराल-व्याल सँ मुक्ते बना देता, करता नहि ओज॥

[२१]

किन्तु कतहु कलुषाकृति कंसक दूत बूझि ने दूषित जानि
टारि देथि निज चरण शरण सँ मोहि अधम कें सारङ्ग पाणि।
मुदा हमर सन्देह वृथा ई, अन्तर्यामी सब व्यापार,
विमल दृष्टि सँ सभक जनै छथि ओ क्षेत्रज्ञ महान उदार॥

[२२]

पद-पङ्कज पर पतित कृताञ्जलि, करुणदृष्टि सँ जौं गोविन्द
देखि लेता हमरा तँ शीघ्रे हम विध्वस्त-पाप-छलछन्द।
निःसन्देह सदेह पुलक-अञ्चित शरीर पायब आनन्द
ब्रह्मानन्द-सरोवर मे डुबकी लगबैत विभोर अमन्द॥

[२३]

ज्ञाति अनन्यशरण बान्धव बुझि जैं महान युग भुज सँ ईश,
लेता समेटि, तुरन्त तीर्थ सम पावन होयत काय अनीश।
एवं जन्म जन्म केर सञ्चित एकर कर्मकृत बन्धन पार,
पुनि अपार संसार रूप नहि पारावारक भय सञ्चार॥

[२४]

अङ्ग-सङ्ग-पावित बद्धाञ्जलि कृतप्रणाम हमरा श्रीनाथ,
हे अक्रूर! तात हे! जैं कहता मम जीवन हैत सनाथ।
कारण, एहि महामहिमामय हरिक उपेक्षित जे जन भेल,
तकर जन्म धिकारक भाजन वेद शास्त्र सब मे अछि देल॥

[२५]

यद्पि तनिक प्रिय बन्धु न क्यो वा अप्रियरिपु उद्स्त नहि लोक,
तद्पि भजन-रत भक्तजनक प्रति करुणा-कादम्बिनी वेरोक।
बरिसबैत छथि वनमाली, जहिना की सुरतरु आश्रित जानि,
वाञ्छित विपुल-वस्तु केर वितरण करइत छथि सदिखन सम्मानि॥

[२६]

आ' लखि प्रणत पाँज मे लऽ सस्मित कर पकड़ि हमर बलराम
लऽ जा कऽ घर ससम्मान दऽ कऽ गृहस्थ-समुचित आराम।
कुशल प्रश्न पुछताह कुशलमति, क्रूर कंस केर की व्यवहार
कोन प्रकारेँ स्वजन वर्ग मे कहु अक्रूर! सहित विस्तार॥

[२७]

एहि प्रकार विचार बाट मे करइत कंसक चार महान
लुकझुक सूर्य करैत पहुँचला स्यन्दन सँ गोकुल मतिमान।
आ' देखल दिक्पाल-मुकुट—मणि-चुम्बित-धूलि-चरण केर छाप,
चिह्नित कमलयवाङ्कुशादि सँ गोष्ठ मध्य, जे लखि हृत पाप॥

[२८]

से देखिते मोदेँ अमन्द चञ्चल, प्रेमेँ रोमाञ्चित भेल,
नोर·नीर-जड़-नयन, उतरि रथ सँ भक्तिक सीमा टपि गेल।
आह! थीक ई प्रभुपद-धूलि कहैत श्वफल्कक सुत सस्नेह,
ताहि मध्य लगले लोटाय लगला बनि भावुकता केर देह॥

[२९]

पुनि देखल बथान पर पीअर नील वसन युत जन चित चोर,
शारद-सरसिज-नयन महाभुज सुमुख श्याम आ' गोर किशोर।
ध्वज वज्राङ्कुश कमल चिह्न सँ चिह्नित चरणेँ गोकुल गाम
समलङ्कृत करइत वनमाली पुरुष प्रधान दुनू गुण ग्राम॥

[३०]

सर्जन रत्ता तथा विसर्जन केर हेतु त्रिभुवन केर नाथ,
सृष्टिक हित अवतीर्ण दीप्त दश दिशा प्रभें करइत श्रीनाथ।
महामारकत-मञ्जुमहीधर, रजतराजि-गिरि केर सरूप,
कुञ्चित केश-कलित केशव आ' रामक मञ्जुल मूर्ति अनूप॥

[३१]

चट पिरीति-पीयूष-पयोनिधि मे निमग्न विह्वल, बल श्याम-
केर पाद-पङ्कज पर प्रमुदित पतित दण्डवत कैल प्रणाम।
मुदा दुहुक दर्शन - अमन्द - आनन्दनोर-परिपूरित-नैन,
आ' पुलकित उत्कण्ठित भेने नाम कहक हित फुट नहि वैन॥

[३२]

अभिप्रेत बुझि प्रेतनाथ-पूजित-पद, प्रीत-प्रणत-हितकारि,
चक्राङ्कित हाथें उठाय हिय सँ लगबैत भेलाह मुरारि।
तथा प्रलम्बविघाती, भऽ कऽ प्रणत लगा हिय, दूनू हाथ
पकड़ि गान्दिनी पुत्रक सानुज आनि भवन कऽ देल सनाथ॥

[३३]

स्वागत कऽ पुनि कुशल पूछि, बैसाय वरासन पर तत्काल,
विधिवत् पैर पखारि दैत मधुपर्क हृदय सँ होइत नेहाल।
गाय समर्पित कऽ तिरपित भऽ जाँति बाट केर थाकल जानि,
षट् रस भोजन देल युगल अम्भोज नयन श्रद्धे सम्मानि॥

[३४]

भुक्त तृप्त अक्रुर कें धर्मक मर्मज्ञाता श्रीबलराम,
पान गुआ एला लवंग आ' माला दऽ कऽ देल आराम।
आहत बूझि दानपति कें पुनि पुछल नन्द खल कंस जिबैत
पशुघाती पालक लग भेँड़ा जकाँ कहू छी कोना रहैत॥

[३५]

हरि ! हरि ! भौहरि करइत अपने बहिनिक सन्तानक संहार
सद्यः जात देखिओ कऽ शिशु प्राणीप्राणक प्रिय अविचार ।
कैलक जे, तकरा शासनमे रहइत प्रजाकेर हे धीर !
कुशल विचार करब की, नामो-जकर सुनैत नयन मे नीर ॥

[३६]

एहि प्रकारेँ नन्द महर केर सत्य मधुर वचनेँ सत्कार
पाबि तथा कुशलक पुछने अक्रूरक सकल पथश्रम पार ।
ता' साँझुक जलपान कृष्ण कऽ कैल उपक्रम पूछक लेल,
कंसक की व्यवहार स्वजनमे आ' इच्छित छै' की की खेल ॥

[३७]

तात ! पुछब की कुशल स्वजन केर वा प्रजाक, बढ़इत जै' ठाम
कुल आकुलकारक रोगे सम दुष्ट नृपति कंसे मम माम ।
पाओल बहुत कलेस हमर माता ओ पिता साधुकेर रूप,
हाय ! दुनूकेँ पुत्र मरण आ' जहलक दुख दै' अछि खल भूप ॥

[३८]

चिर इच्छित निज जन केर दर्शन आइ परम सौभाग्येँ भेल,
कहल जाय कारण अपने केर शुभागमन ऐ' ठाँ जै' लेल ।
सुनि अक्रूर, क्रूरता-प्रतिमा-कंसकेर विध्वंसक नीति,
यदुकुल सँ शत्रुता तथा वसुदेवक वध उद्यम केर रीति ॥

[३९]

एवं दूत बना कऽ हिनका प्रेषित कैलक अछि जै' हेतु,
आ' संवाद कथन नारद केर सब सुनौल से यदुकुल केतु ।
श्याम राम आकर्णन कऽ से मारि ठहाका नृप आदेश,
पिता नन्द केँ कैल निवेदित, ओ बुझितहुँ दुष्टक उद्देश ॥

[४०]

सोचल मन मे जौँ मथुरा नहि जैब कंस केर पावि हकार,
व्रज केँ क्यो न बचा सकते, शीघ्रे सबकेर करत संहार।
आ' गेलो सँ करत उपद्रव, किन्तु कृष्ण सङ्गहिं रहताह,
हिनका लग चलतै न ओकर किछु ई विचारि किछु कऽ उत्साह॥

[४१]

सकल गोप केँ कहल दूध घी दही नेनु माखन उपहार
लऽ कऽ चलू काल्हि मथुरा, चढ़ि गाड़ी, अछि राजाक हकार।
जाय देबैक भेँट भूपति केँ देखब उत्तम धनुषक याग,
गोप मण्डली सानुराग सुनि बूझि लेलक बड़का थिक भाग॥

[४२]

मुदा पिता सँ कऽ विचार दुहु बन्धु निशीथे मे जैबाक—
हेतु, मातृ-पद पर प्रणाम कैलनि, की यशुमति बूझि अवाक—
नोर धार बहबैत, वक्षसँ सटा कोर कऽ दूनू बाल
जानि न सकली ओही थिति मे बीति गेलैन्हि कतेको काल॥

[४३]

पुनि धऽ धैर्य परम दीना सम बजइत भेली पतिक दिश ताकि,
वचैवाक हित जनु कहैत हो क्यो उब डुब तटिनी मे थाकि।
नाथ ! कते कबुला पाती कऽ भेलहुँ वुढ़ारी मध्य सनाथ,
जाहि पुत्र केँ पाबि, जकर बिनु एको पल बनि जाइ अनाथ॥

[४४]

कऽ कतेक उपवास अनेको तीर्थवास जे पौलहुँ रत्न,
योगी यती ज्योतिषी तान्त्रिक सँ करौल जनिके हित यत्न।
साधि शरीर हस्तगत कैलहुँ रहि अहीर कुल मे जे हीर,
केहेन कपार, अपार-गुणक-भण्डार चलल से बना अधीर॥

[४५]

कहियो कतहु न गेल छलै घर सँ बहार ई दुनू कुमार,
कोना जैत मथुरा नगरी से, बीहड़-पथ धऽ अति सुकुमार।
जतै काल सन क्रूर कंस केर सकल प्रजा पर छै' आतङ्क,
छी बुझैत मख देखि औत झट तैयो चित भऽ रहल सशङ्क॥

[४६]

बूझि रहल छी नृपतिक डर सँ स्वामी ! जा रहलहुँ सुत सङ्ग,
जाहि दुष्ट केर दुःशासन मे घर रहलहुँ रक्षित नहि अङ्ग।
किन्तु हमर तँ नयन ज्योति ई. रहब कोना किछुओ दिन नाथ !
अबला जीवन केहन, समाजक-डर सँ जाय सकी नहि साथ॥

[४७]

जौं अनिवार्यें जैब बुझी तँ शीघ्र देखा मथुरा दुहु वीर,
शपथ हमर सङ्गहिं लऽ आयब, तेजब नहि पिजरा केर कीर।
प्यास लगैत देब निर्मल जल, ठेही बुझि पद देब दबाय,
अधिक रौद होइतहिं तरु छाया मे आरामक करब उपाय॥

[४८]

अछि पाथे माखन मधु मिसरी फल अनेक, से भूख लगैत
अपनहिं अहाँ खुऐब हाथ सँ, ई संकोची अछि न मङैत।
घोड़ा रथक कतहु भड़कै नहि, तेना सूत हाँकै ओरिआय,
जैब पकड़ने दुहु नेना कें देखइत खसै न कतहु ओंघाय॥

[४९]

नगर देखयबा काल पकड़ि कर जैब अहाँ, कहुँ छूटि न जाय,
रथ गज तुरग सैन्य सँ अस्त-व्यस्त मार्ग सँ लेब हँटाय।
योग टोन केर जननिहारि बहुतोक जनाना अछि तै, ठाम,
शुद्ध बुद्ध ननुआगर नेना, रहब सतर्क छुवै नहि वाम॥

[५०]

जौँ नृप केंर कुदृष्टि कने हो, हीरा रत्न जवाहर लाल,
राखि देव आगाँ मे अगणित, एवं लगा पैर सँ भाल।
कहब बुझाय, सकल धनसम्पति गोधन सहित हमर जे नाथ !
सब सेवा मे करब समर्पित, किन्तु बिना सुत हैब अनाथ ॥

[५१]

तेँ दूनू कुमार पर भूपति ! बूझि हमर प्राणक आधार,
कैल न जाय कुदृष्टि, अन्यथा हमर उजड़ि जायत संसार।
एहि प्रकारेँ बुझा सुझा नृपकेँ सकुशल दूनू सुत सङ्ग,
धनुष यज्ञ लखि ऐब अहाँ, तखने जीवन मे पहिल उमङ्ग ॥

[५२]

अधिक कहब की स्वयं अहाँ मतिमान, पुत्रकेँ प्राणसमान
छी रखने बुझि कुल प्रदीप जकरा छन भरि नहि देखि मलान।
सूनि विकलमति यशोमतिक वात्सल्य भरल गप महर महान.
बोधि प्रिया केँ मधुर कथा सँ कैल दलानक उपर प्रयाण ॥

[५३]

बाद यशोदा नोर पोछि, शिर सूँघि दुनू कुमरक तै, काल,
करा मङ्गलाचार विप्रसँ बान्हि यन्त्र गरमे दऽ माल।
आ' देवी देवक वन्दन कऽ वारंवार दैत आशीस
विदा कैल मथुराक गमन हित दबा असह्य कोनहुँना टीस ॥

[५४]

ओम्हर सूनि राधादिक वनिता मथुरा जेतै राम आ श्याम,
जाहि हेतु अक्रूर ऐल अछि दूत बनल श्रीनन्दक धाम।
व्यथा-वारि-निधि मे उबडुब भऽ विगलितबन्धन केश दुकूल,
भावी विषम-वियोग-वारिधिक कतउ कोनो देखल नहि कूल ॥

[५५]

चक्रधरक चिन्तन करैत पुनि हास विलास खेल आलाप,
रूप अनूप भावभङ्गी सँ भरल पिरीति रीति निःपाप।
आ' नयनक नीरद सँ झर झर झहरबैत झुकि नोरक नीर,
कुहरि कुहरि हरि! हरि! हरेक पिटि वक्ष बजैत भेल अस्थीर॥

[५६]

अहो धाता! छौने तव हिय कृपा केर कणिको,
मिला कऽ प्राणीकेँ प्रणय-परिपाकी न कनिको।
भेलै तैयो दै'छैँ असह-विरहक्लेश तकरा
सदा क्रीड़ा नेना सम तुअ, कहू हाय! ककरा॥

[५७]

जैँ तोँ कारी-कुटिल-अलक-व्याप्त शोकापहारि
ईषद्धासाङ्कित शुक-समोन्नास पद्मानुकारि।
पद्माप्रेमास्पद मुख देखा कऽ करै' छैँ सुदूर,
तैँ बूझो जे तोहर नहिञे नीक हो काज क्रूर॥

[५८]

दऽ से लोचन क्रूर छौनि रहलैँ अक्रूर तोहीँ कहा,
जैं' सँ तोर समस्त सृष्टि सुषमा प्रेमैँ देखै छी अहा!
एके ठाम मुरारि-मञ्जुल-मनोहारी तने पावि कऽ
छैँ तोँ मूढ़ नितान्त से हम बूझी तोरे क्रिया भावि कऽ॥

[५९]

एवं विधिहिधिकारि, आपस मे व्रज बालिका।
उच्चस्वरैँ उचारि, विकलमना लागलि कहय॥

[६०]

जनिक बनल छी दासी हम सब स्वजन पुत्र पति घर कें त्यागि,
तनिके रूप अनूप हास परिहासहिँ मे चित कें अनुरागि।
चपला-चपल-प्रेम से नव नव वस्तुक नेही नन्दकुमार,
बना उपेक्षित जाय रहल अछि गुनक न कऽ कनिओक सुमार॥

[६१]

सुप्रभात ई हो निशि माथुर महिलागण केर आशीर्वाद,
निश्चय सत्य भेल जे निजपुर प्राप्त कन्हैआ केर साह्लाद।
मन्द मन्द मुसुकान-मधुर मदिरा सँ मण्डित आनन-चान—
केर कराओत नयन-चकोरी कें सम्मान पुरस्सर पान॥

[६२]

तैं' मधुराकृत मधुरावालिक मधुमय मञ्जुल गप सप सूनि,
लज्जा-लसित मृदुल-मुसकीयुत लास विलास निपुणता गूनि।
हृतमानस भऽ भ्रान्त, धीर आ' रहितहुँ गुरुजन केर अधीन,
ऐ' ग्राम्या गुजरी गण हेतुक कथमपि नहि औताह प्रवीण॥

[६३]

आइ हैत निश्चय तैं' ठामक जनता-नयनक हेतु महान—
उत्सव, जेहन अभूतपूर्व क्यो देखि सकल होयत नहि आन।
तथा मार्ग मे रमारमण गुण—सदन देवकी सुतक सहास,
वारिज-वदन विलोकि दर्शको जुड़ा लेत लोचन सोल्लास॥

[६४]

अकरुण एहेन क्रूरकर्मा केर के अक्रूर रखलकै' नाम,
जे व्यथिता व्रजबालिकाक प्रियतम छिनि लऽ जयते निज गाम।
केहन कठोर रामयुत कान्हा एखने अछि रथ पर आरूढ़,
चढ़िअबैत चलवाक हेतु चढ़ि गेल शकट गोपो सब बूढ़॥

[६५]

क्यो न अपन, जे व्यक्ति कनैको काल रोकि राखत घनश्याम,
तेँ बुझैत छी हमर सभक भऽ गेल भाग्य अछि सम्प्रति वाम।
तेँ की जाय देबै' मोहन केँ, ऐखन रोकि रखै' छी आब,
बूढ़ सूढ़ की करत ? बिना श्यामक डुबि जयते जीवन-नाव॥

[६६]

एहि प्रकारेँ विरहविह्वला वासुदेव मे चित कऽ लीन,
लज्जा तजि ब्रजवालबधू सब, बिनु पानिक जहिना हो मीन।
छटपट करइत श्रीगोविन्द दामोदर माधव लऽ लऽ नाम
चौना करइत भेलि विकलमति, सुनि से दुःखी गोप तमाम॥

[६७]

कनइत एहि प्रकार, बालावृन्दक विकल-मति।
अक्रुर रथ असवार, हाँकल चारू तुरग केँ॥

[६८]

तथा नन्द आदिक गोपो सब लादि शकट पर माटक माट,
दूध दही घृत माखन भरिभरि चलला तखने माटो माट।
किन्तु बूझि निश्चय श्रीराधा चलिए देलनि राम घनश्याम,
सकल गोपबालाक सङ्ग कोपाकुलि कहइत थम्ह उद्दाम॥

[६९]

वारण करितहुँ हरिक मत्त—वारण समान रथ आगाँ आबि,
प्रेरित कऽ सब सखि मण्डल केँ रथ तोड़ाय अक्रुर केँ दाबि।
फज्झति कैल कियो' क्यो पट सँ बान्हि, मारि मुक्का ओ चाट,
लेल नछोड़ि कियो कङ्कण सँ, प्रभु लखि गोपीगणक उचाट॥

[७०]

अञ्जलि बद्ध बोधि राधा कें तथा सुना आध्यात्मिक बाद,
बुझा सुझा अक्रूरहुँ श्रीपति कैल कोनो रूपें साह्लाद।
तखने मणि सँ खचित विश्वकर्माक रचित सुन्दर रथ एक,
ऐल व्योम सँ जकर तड़ित रुचि देखि सकै' छल क्यो न कनेक॥

[७१]

थिति बुझि हरि रथ राखि, बन्द कैल यात्रा अपन।
सङ्केतित गप भाखि, पुनि अक्रूरहुँ कैल थिर॥

[७२]

तकर बाद साह्लाद गोपिका गोपक मण्डल,
नृत्य-गान रत भेल, जेते नहि प्रभु तें चञ्चल।
आ' खा' पी' सबलोक सुतल अपना अपना घर
मुग्ध मोहनो शयन कैल जननी लग शुभकर॥

—:o:—

एगारहम सर्ग

[१]

सकल-गोपिका-सहित राधिका निद्रित एखन जानि घनश्याम,
बितइत तेसर पहर राति, यशुमति केँ जगा सहित बलराम।
माया एखन पसारि शीघ्र ऐबाक दैत आश्वासन पूर्ण,
कऽ प्रणाम शुभ आशिष लऽ उठबैत भेला नन्दहुँ केँ तूर्ण॥

[२]

एवं कहि चुपचाप चलू सब, राधिकाक भय सँ अति भीत,
चढ़ि स्वर्गीय-यान पर मथुरा विदा भेला अक्रूरयुत प्रीत।
छनमे चन्द्राकार रुचिर शत राजमार्ग सँ वेष्टित रूप,
विवध-रत्न-चर्चित विधिपूर्वक निर्मित वीथी-दलेँ अनूप॥

[३]

धनकुबेर सम सहस सेठि व्यापारिक बनिचे वस्तु अनन्त,
सज्जित विपणीमध्य बढ़ा अछि रहल जकर शोभा श्रीमन्त।
भिन्न-भिन्न भाँतिक सहस्रदल शतदल सँ शोभित रमणीय,
अगणित सलिलपूर्ण पोखरि सँ लक्षित, कामकला-कमनीय॥

[४]

धृतरत्नालङ्कार सकल शृङ्गार सुशोभित लाखक लाख
हरिदर्शन-लालसा-युक्त—रमणी जै' ठाम बिसरि कऽ धाख।
माला लाबा फूल हाथ मे राखि तकै' छलि पथ अनिमेष,
जकर लेख लिखि सकथि गणेश न तथा मूक वर्णन मे शेष॥

[५]

कोटिक उच्चकोटि उद्यानें लसित फूल फल सँ गमकैत,
सतत सुरक्षा-निरत सैनिकें रक्षित, शस्त्रास्त्रें चमकैत।
वैरी वर्ग हेतुएँ दुर्गम अगणित दुर्गें बनल कराल,
तीन कोटि-नभ चुम्बी रत्नाञ्चित कोठा सँ दृष्ट रसाल॥

[६]

ताहि मञ्जु मथुरा मे माधव कऽ प्रवेश तजि दिव्य विमान,
छवि देखैत नगरक हलधर—अक्रूर सहित बढ़ला श्रीमान।
कहुँ छत सँ कुमारिका लोकनिक अक्षत फूलें पूजित ह्वैत,
शास्त्र-कुशल कुशहस्त विप्र—वर्गक कहुँ आशीर्वाद पवैत॥

[७]

देखल पथ मे टेकि कोनहुना ठेङा चलइत झुकलि नितान्त,
कृच्छवरणि विकृताकृति कपइत जराजनित क्लेशें अति क्लान्त।
कस्तूरी कुङ्कुम चाननयुत शृङ्गारक भाजन लऽ हाथ,
कुब्जा कें श्रीनाथ, देखि पूछल ओकरा बनबैत सनाथ।

[८]

के तों थिकी, कहाँ चलली अछि तथा कहह की तोहर नाम,
चानन कने दितह तँ होइतहु पूर्ण सकल तोहर मनकाम।
सुनि, सरूप अपरूप देखि, ईश्वर बुझि, कऽ तत्काल प्रणाम,
कहइत भेलि थिकहुँ हम भूपति कंसक दासी हे घनश्याम!

[९]

नाँ त्रिविक्रमा कहै लोक ड्योढ़ी मे हमरे सँ शृङ्गार
रानी लोकनि करावथि, अपने जे जाचल अछि दिव्यकुमार!
से चानन की, एहेन मूर्ति कें प्राणो अपन देब स्वीकार,
कहि शृङ्गार कैल श्रीकृष्णक, 'मुदित तखन करुणा आधार॥

[१०]

नवयौवन निःसीम रूप नाना भूषण सँ भूषित भेलि—
अब्जा बना कहल पुनि मिलबे, ओ प्रभुपदरज लऽ घर गेलि।
तकर बाद पद पर नत मालाकारक माला कऽ स्वीकार,
बदला मे अक्षय्य भक्ति दऽ किछु बढ़ि कऽ पुनि नन्दकुमार॥

[११]

देखल कते मोटैतक माथैँ लऽ जाइत चालित पटराशि,
धोबि एक राजाक भवन दिशि पाबि जुआनी परमोल्लासि।
जाचल अचलविभूति श्याम किछु वसन, सुनैत रजक विकराल,
बजइत भेल गोआर योग्य नहि ई थिक, नयन दुनू कऽ लाल॥

[१२]

सुनि हरि हलधर सहित विहँसि हति रजक, पठा ओकरा गोलोक
नव पट पहिरि सबन्धु, ऐल जे छल लघु पथ धऽ ब्रज सौं लोक।
बचल वसन तैं गोप वृन्द केँ बाँटल, तकर बाद घनश्याम,
भ्रमण करैत नगर अक्रुर केँ पठा अपन घर श्रीसुखधाम॥

[१३]

सन्ध्या होइत विदित वैष्णव अति भक्त कुविन्दक घरमे जाय,
सेवा ग्रहण कैल दुहु बान्धव नन्दादिक समेत यदुराय।
ओम्हर कंस भरि राति देखि दुःस्वप्न परम चिन्तेँ आक्रान्त,
भोर होइत गोपुर लग हाथी राखि कुवलयापीड़ अशान्त॥

[१४]

रङ्गभूमि मे मञ्च अनेको बनबाओल, योद्धा जैं ठाम
राखल शतशः रामश्याम हित, त्रस्त छलै जनिके सुनि नाम।
ऋषि मुनि विप्र बर्ग भूपति गण औरो सकल नागरिक वृन्द
डङ्का चोट सुनैत उपस्थित निज निज मञ्च उपर सानन्द॥

[१५]

एक विशिष्ट मञ्च पर अपनहुँ सकल अशिष्ट शिरोमणि कंस,
जकर डरेँ करबद्ध देवगण घूमथि रन वन तजि तजि अंश।
बैसल जाय सभास्थ लोक रुखि देखै ओकर होइत भयभीत,
विरुदावली पढ़ै, छल मागध—बन्दी बुझितहुँ खल अविनीत॥

[१६]

मल्ल-जुटान-समय बुझि तखने वनमाली बलदेवक सङ्ग,
अबिते अनायास शङ्कर धनु उठा तोड़ि देले सोमङ्ग।
होइत जकर भैरवरव धमकल धरा, वहिर जनता भऽ गेल,
पाओल परम विषाद कंस, हरिभक्तक चित आनन्दित भेल॥

[१७]

एकर बाद हुलबैत विकट हाथी हस्तिप केँ देखि मुरारि
परिकर बान्हि पकड़ि करिराजक कर पृथ्वी पर शीघ्र पछारि।
एवं दूनू दाँत तोड़ि हति खल महाउतक कऽ संहार,
एक एक करिदन्त कान्ह कऽ सभा एला युगबन्धु उदार॥

[१८]

योगी सँ हृत्पद्म-प्रतिष्ठित परमानन्द रूप परमेश,
नृपति-निकर सँ निग्रहकर्त्ता सकल-सृष्टि शासक सम वेष।
माय बाप सँ दुधमुहँ शिशु, कामिनि सँ कोटि काम केर रूप,
काल कराल कंस सँ, मल्लेँ मृत्यु, यादवेँ प्राण सरूप॥

[१९]

दृष्ट होइत तैं काल कृष्ण कऽ गुरुजन केँ वल सहित प्रणाम,
लड़ि लड़ि मुष्टिकादि केँ मारल जय हरि जनता कहल तमाम।
कंस देखि उद्दाम शक्ति दुहु बन्धुक, गरजि देल आदेश,
युद्ध बन्द कऽ बान्ह नन्द केँ छीनि सङ्ग केर विभव अशेष॥

[२०]

तथा दुष्ट दूनू बालक कें एहि नगर सँ शीघ्र निकाल,
सुनिते हरि केहरि समान झट फानि मञ्च पर बनि विकराल।
निहत कंस कें कैल चक्रधर, तेज ओकर प्रभु चरण प्रविष्ट,
रत्नयान चढ़ि स्वयं विष्णुपद गेल रूप धऽ परम विशिष्ट॥

[२१]

तकर अनन्तर कन्नारोहट करइत छल जे कंसक लोक,
हरि अज्ञान सभक हरि छन मे दऽ कऽ आध्यात्मिक आलोक।
उग्रसेन कें नृपति बनाओल, पुनि सबन्धु जा' कारागार,
माय बाप कें मुक्त निगड़ सँ कैल स्रवित-लोचन-जलधार॥

[२२]

एवं कनइत दुहु प्राणिक पद पकड़ि कहै लगला हिचकैत,
हमरा दुनू भाइ सन जग मे कर्महीन अछि भऽ न सकैत।
कहियो कोनो टहल करबा केर अपने सभक भेल नहि भाग,
रहल अहाँ लोकनिक दबले शिशु कें दुलराबक हित अनुराग॥

[२३]

जनमक पहिनहिँ सँ दिओल कारागारक यन्त्रणा कठोर,
हमरे हेतु अनेको अग्रज निहत भेला, ई पातक घोर।
सकल क्षमा कऽ क्षमा सदन हे अम्ब! तथा हे जनक महान,
चरण-शरण मे राखि सदच्छन सेवा ग्रहण करी मतिमान॥

[२४]

सुनि वसुदेव देवकी पुत्रक पीयूषोपम बोल अमोल,
कोरा कऽ दुहु जन कें चुमि मुख नोर-अपार-नीर सँ धोल।
मुदा बाजि सकला न यत्न करितौहँ नितान्त मुदाकुल भेल,
खुजै कण्ठ की जल्दी ककरो अप्रत्याशित हर्षक लेल॥

[२५]

एहि प्रकारेँ माय बाप केँ कऽ प्रसन्न निज-गुण सँ श्याम,
होइत भेला मथुरास्थ प्रजा केर प्राणक प्रिय समेत बलराम।
पुनि कनइत निश्चेष्ट नन्द केँ दर्शन केर सब तत्त्व बुझाय,
मिथ्या माया मोह न कक्करो कयो सम्बन्धी विषय सुझाय॥

[२६]

दऽ विदाइ बहुतोक, कोनहुना विदा कैल कऽ दण्ड प्रणाम,
मणि बिनु फणि समान नन्दन बिनु नन्द पौल दुख टा परिणाम।
तकर वाद कंसक डर सँ भागल जतेक छल माथुर-वृन्द,
आनि सबहिँ केँ अपन भवन धन दैत कैल सत्कार अमन्द॥

[२७]

भऽ उपनीत पूज्य सान्दीपनि सँ पुनि विद्या पाबि अशेष,
मृतसुत गुरु केँ जीवित कऽ दक्षिणा देल कऽ पूर्ण उदेश।
पाबि शुभाशीर्वाद गुरुक दुहु बन्धु तखन मथुरा ऐलाह,
सकल प्रजायुत जननी जनकक बहइत भेल प्रमोद प्रवाह॥

[२८]

एक दिन किछु समय बितने साँझ केँ गोविन्द,
विश्वहित एकान्त गृह मे मनन-निरत अमन्द।
क्षीण दूरागत कोनो मृदु—स्वरक पड़ितहिँ कान,
कारुणिक से, व्यथित भऽ लगला सुनऽ भगवान॥

—:*:—

बारहमसा

ग

[१]

प्रतिमासक दारुण-दुख-खीन कृश-प्रतिमा सहि नीन-विहीन ।
सुनह सजनि ! जे की दिवस रजनि गाबी भऽ वृषभानु-दुलारि गे ॥

[२]

मधु प्रिय मधुसूदन केँ जानि, दैत प्रथम मधु केँ दृगपानि ।
नूतन-चैतन-धन चैत नचैत सन आयल सभक दुआरि गे ॥

[३]

शिशिरक सीदित तरु तरुनाइ पाबि नवल पल्लव सँ आइ ।
हमर झामर तन, झाम गुड़य मन, बिनु मनमोहन मुरारि गे ॥

[४]

देखि विकच वेलीक निकुञ्ज, पिबि रस विक चञ्चल अलि-पुञ्ज ।
फुटल करम मम, फुटल ओ निरमम, फुट लखिओ वय वारिगे ॥

[५]

पिक अलापि कल पञ्चम तान, जपिक धरिक तोड़य दृढ़ ध्यान ।
समद मदन, पहु विरह वेदन-कोना सहत निछच्छ गोआरि गे ॥

[६]

मन्द पवन वन उपवन बीच-वुलय, सिहरि कवुलय हिय नीच।
नन्दक नन्दन यदि दासियो समान बदि आबै, नित पुजब पुरारि गे॥

[७]

आम मजरि टिकुलल सब ठाम, हम लटि कुल ललना बदनाम।
मनबी मरण; यम दैछ न शरण, मन-मधुप लुबुध श्याम-डारिगे॥

[८]

लाल सिरीष छलैँ कऽ रीष, कुहु कोकिल-कण्ठैँ दश दीश।
माधवक निज प्रतिनिधिए माधव मनु सुनबय व्यथित विचारि गे॥

[९]

हृदय विदारि मदन-वश केर रक्त-सुमन दाड़िम जनु हेर।
जकर बीजैक सन हरिक दशन क्यो ने--कथमपि सकत बिसारि गे॥

[१०]

विषम उषम सँ गुमसल देह-स्वेद-सलिल बरिसय बनि मेघ।
चानन आ'चान न सोहाय,बिनु पहु लागै-आनल क्यो अनल पजारि गे

[११]

पङ्कज मलयज-पङ्कज सङ्ग, शयन, ताहि पर रखितहिं अङ्ग।
बनय भसम सम, दुखक समय गहँ हित अनहित अनुकारिगे॥

[१२]

पति बिनु हमर विपति-जन जानि, सदय मूक महु दै अछि कानि।
झहरि झहरि नोर जकर कुसुम रूप धैरज दऽ करय गोहारि गे॥

[१३]

कहब कते ? हब रहल न आब, देखत के दारुण हिय घाव।
प्राण ई कहय प्राणपतिक पिआरि-कुब्जाक बिधि करथु बिटारि गे॥

[१४]

बलइँ विदित सब मासक जेठ, ऐल उपद्रावक बनि जेठ।
शम न कतउ, लय हेतुएँ शमन जनु आनल ग्रिषम हकारि गे॥

[१५]

मित्र अखिल ब्रह्माण्डक ख्यात, मित्र सपत्न गेला बनि स्यात्।
वमि वमि अनल-लपट प्रकृतिक पट, चौपट करथि जैँ की जारिगे॥

[१६]

दैव विपक्ष, पछबा परचण्ड भऽ पछ वासरपतिक अखण्ड।
झोंकय सन्तप्त-धूलि सदिखन हूलि हूलि, सब दुख ऐल की निआरि गे

[१७]

सर सरिता भऽ गेल जलहीन, जरल जलज बचले नहि मीन।
दगध विपिन, दावा दावानल पान केर, करत के बिनु कंसारि गे॥

[१८]

वनमाली आमक तर जाय, हो नेहाल गोपी हथिआय।
हमर केहेन वनमाली जे एतेक आली! गोपी केँ तेजल परितारि गे॥

[१९]

खन उमड़य लागल घनश्याम तदपि न गोचर हो घनश्याम।
धिक ई जीवन, वितनहुँ अवधिक दिन, जीबी कठजीव हम नारि गे॥

[२०]

नीर-भरल नीरद–घट आनि शुचि नितान्त-शुचि करुणा–खानि।
अमृत सीचय ताप-निचय–विकल–महि हृदयक देखि दरारि गे॥

[२१]

हलधर बान्धव पुलकित-काय, करय अबाद क्षेत्र निज जाय।
हमर निठुर हलधरक बान्धव नहि आबै एहि क्षेत्रक आरि गे॥

[२२]

देखि दुसह दुख आ' बुझि हाल पीय–रहित पीअर व्रजबाल।
पीड़ित प्रचुर पीत बनल झरय-आम शाखा-जननिक कोर छाड़ि गे॥

[२३]

कृष्णक चिन्तनमे तन झाम, देखि हमर, जामुन बनि श्याम।
आबय मोहन खिसिआबय जनु झरिझरि, सहिली हमहुँ मन मारि गे॥

[२४]

भेल तोर बर-हरख, न आब-आओत ई निज हृदयक भाव।
बेकत करय हा! बिहुँसि बरहर सखि! देखी हम नयन गुराड़ि गे॥

[२५]

शीतल सकल महीतल भेल, पी तलफाय तेहेन दुख देल।
सरस जीवन बरिसैत न जीवन भल, करम सकय क्यो न टारि गे॥

[२६]

मेघ मृदङ्ग मुदित बजबैत, हँसि दामिनि-दशनो देखबैत।
आयल सावन, वन उपवन हरिअर, हरि नहि करय पुछारि गे॥

[२७]

दारुण-दुख मम देखि कदम्ब, रोमाञ्चित बनले अविलम्ब।
चपल भ्रमर प्रतिपल झिकझौरै ताहि-कानो हम पारि भोकारि गे॥

[२८]

दादुर-धुनि सुनि फाटय कान, घोर करय झिंगुर रव प्राण।
दमसि जलद मसि सम दमसावै, किछु-शोचितहिं वैसी हिय हारि गे॥

[२९]

ग्रीष्मक ललि उछललि सब धार, निधि-सन्निधि जाइछ सोद्गार।
कामिनि कुलक रीति-कूलक निपात कय-सकत कोनाकऽ नीतिवारि गे॥

[३०]

तजि व्रत कुसुमित व्रततिक वृन्द पटिआओल तरु लपटि अमन्द।
हमर तमाल-तरु श्यामल तरुण पति-गेल सुख-सदन उजारि गे॥

[३१]

विरह-वेदन व्रज थित अबलाक लिखित जलद पर वर्ण बलाक।
तदपि मुदित समुदित भाग बूझि नाचै पाँखि मयूर पसारि गे॥

[३२]

दबल प्रभा निशिदिन ग्रह केर, भादव वारिद सँ नभ घेर।
तरल-तरङ्ग-रङ्ग विरङ्ग भुजङ्ग सङ्ग नद उपटल भयकारि गे॥

[३३]

कड़कि कहै घन वारम्बार, क्यो घर सँ जनु होथु वहार।
समय विकट, पहु निकट जकर नहि काटत कोना से भदवारि गे॥

[३४]

कुहरि कुहरि रटइत हरिनाम, बैसि बिताबी आठो याम।
विजुरिक दीपक प्रकाशमे अकाश सँ जे देखय प्रकृति निहारि गे॥

[३५]

कुसुमित क्योला देखि वताहि–बनल कही "क्यो ला" पहु आहि !
सुनत के तकर, जकर नत भाग छैक, झञ्झा जनु कहय झमारि गे॥

[३६]

संयोगिनि केर धन्य सोहाग, रहलि लगा मेहदी केर राग।
हम की लगाउ, पति अछैत वियोग रोग–रहल ज़कर जान मारि गे॥

[३७]

बुझितहुँ भादव जन्मक मास, अ:वै नहि कपटी वदमास।
अपन वरण आवरण दऽ पठाय घन, वेहोश वनाबै मोन पारिगे॥

[३८]

धवल अकाश, हंस फुटकाश-अट्टहास-युत आसिनमास।
अबैत,कृषक जोगबैत जल आरि बान्हि, बाध मे घुमय लऽ कोदारि गे॥

[३९]

हमर पानि-पनि बचत न आब, पकरि पानि पति वदलल भाव।
धन से, अछैत निज धन खाय माङि चाङि, राखि मुनहर अजवारि गे॥

[४०]

पितृपक्ष तजि प्रेमो कैल, पितृ पक्ष तैयो शिर ऐल।
देवी पक्ष भेटितो विपक्ष देवी पक्ष छोड़ि, जीवन केँ देल जे विगारि गे॥

[४१]

निशि भरि लोचन मे भरि नोर, तकइत पथ आओत चितचोर।
तोड़िदी शृङ्गार-हार, देखि से शृङ्गारहार; भोर लैछ भूषण उतारि गे ॥

[४२]

कहुँ पथ मे अछि पाँक न नीर, मिलत-सिन्धु तटिनी-सुस्थीर
समेटि सलिल रूप दुकूल कमहिं-कूल-जघन कें रहलि उघारि गे ॥

[४३]

हसि शशि भदइक ससि वढ़वैत, आ मम हित दुख कें अढ़वैत।
असित-हृदय कोटि कर-असि तनु पर फेकै भरि रजनि सम्हारि गे ॥

[४४]

कातिक-वाहन-पख-अवतंस-विनु, अवितहिं कातिक चढ़ि हंस।
देखय दुखी न एखनहुँ सव दीप रूप लोचन अनन्त कऽ बिकारि गे ॥

[४५]

डाहि सिनेह ऊक लऽ हाथ, देखा पितर-पथ होउ सनाथ।
नियम चलावै तनि यमक परम प्रिय, लोकहित रोगहुँ उभारि गे ॥

[४६]

विरहाकुल कुल व्रजकेर नारि, अन्नवारि धरि जे देल वारि।
ताहू सबकेर दुख-रातिकें अराति-सुखराति नाम रहल प्रचारि गे ॥

[४७]

गोवर्द्धन-पूजन-छन पाबि विगत सकल सुख-वासर भावि।
कहय हृदय, क्रुद्ध इन्द्र सँ वचौल क्लेशमात्र भोग हेतुएँ अधारि गे ॥

[४८]

समक हेतु भेल देवोत्थान, फोंफ कटैछ हमर भगवान।
जागल रहैत तँ, जे पात्र गलवाहिं केर होइत से ने तीतल विलाड़ि गे ॥

[४९]

मासोदिन कऽ प्रातः स्नान, वर पाओल लहि जे वरदान।
सेहो फूसि देखि ई कातिक ओ नियम नहि तोड़य अपन अविचारि गे॥

[५०]

गरिबक गरुक गहन-दिन जानि, अगहन स्रवित-नयन-हिम-पानि।
आबि से प्रबन्ध कैल, बन्धक-बन्धन-मुक्त-भूषण भऽौल बुधिआरि गे॥

[५१]

किन्तु हमर बन्धक मे धैल-चित लऽ कऽ सचित नहि ऐल।
कोकिल-वञ्चित-काक भेल बाबा नन्द मोर कानै यशुमति नोर ढारि गे

[५२]

हर्षें हसइत हाँसू हाथ, बोनिहारो भऽ गेल सनाथ।
हमर परन्तु दुख केर नहि अन्त देखि भऽ गेल नमित-शिर सारि गे॥

[५३]

देखि अनूप-रूप अपमान, कृष्णक कृत, कऽ क्रोध महान।
सौन्दर्य असार जानि, भीषण तुषार आनि, देल मार्ग कञ्जहुँ उजारि गे॥

[५४]

तेहेन प्रबल विरहानल-धाह, भानु सहित भानुक दबलाह।
सोचि से चितउ चढ़बाक चित मे न चाह, मरणो तँ देलक नकारि गे॥

[५५]

सन सन करइत शीत-समीर-आबय, किन्तु हमर से पीर।
भागय झरकि, दाघ निदाघ समान पाबि, कृत प्रकृतिक हा! उसारि गे

[५६]

बना विभावरि-मान पहाड़, लघु करइत दिवसक आकार।
खट खट दाँत बजवैत पूस आबि गेल, ऐल न तदपि गिरिधारि गे॥

[५७]

हाड़ जाड़-बलसँ कपवैत, दीनक जानु चिबुक सटवैत।
संसार तुषार-घन-आसार सँ छन्न कैल, नीर बूझै लोक फणधारि गे॥

[५८]

पुष्करिणी पङ्कीरुह-हीन, लखि मुहठा अलिदल उड्डीन-
हमर आनन आन नलिन विचारि आबै निज अलि देल तिलवारि गे॥

[५९]

हरि बिनु छाहरियो न सोहाय, निशिदिन नोरेँ देह नहाय।
पुरुषक हृदय पाषाणोसँ पुरुष जे ने छनहुँ द्रवित करु गारि गे॥

[६०]

भेद न निशि-दिनमे कनिञोक, सदिखन विश्व कुहेसक ओक।
ताहि पर सतत बताहि बनवैछ वेधि, वाण सम पछबा पछारि गे॥

[६१]

आबय नहि पहु आ' वय वारि-बहय ज़ेना बिनु बान्हक वारि।
आबि कऽ पछाति भ्रूप छातिएटा पिटि लेत, काज दुरदैवक सुतारिगे॥

[६२]

बनि वेपीर हम पीर बढ़ाय-देव पूर्ण पीरी छिटकाय।
तोरी सरिसवक प्रसून देखवैत माघ इङ्गित करय हिय मारि गे॥

[६३]

जें लखि हसि हसि कहइछ कुन्द-वृन्त डोला औथुन न मुकुन्द।
सोहरल-सित-सुम सोहिजन सैह जनु सङ्केत करय सुकुमारि! गे॥

[६४]

दिग दिगन्त लखि तोरिक फूल, भ्रान्ति मने मन हो निर्मूल।
नुकैल कतौ अछि नन्दक नन्दन आबि-पीत-पट अपन पसारि गे॥

[६५]

चार चढ़ल कौखन जैं काग-कुचरय, की बुझि जागल भाग।
खीर-हीर जटित कटोरी भरि देल कत, वायसकेँ खूब चुचुकारि गे॥

[६६]

किन्तु सगुन होइतहुँ वनश्याम फूसि बनाओल सगुन तमाम।
कतेक गणक गण भेल फुसिआह आह! औत मनमोहन उचारि गे॥

[६७]

दुष्ट माघ हमरे सतबैक-हेतु एखन बुझि शिशिरे छैक।
आनल वसन्त पञ्चमीकेँ जे असन्त-आबि सतत करय बटमारि गे॥

[६८]

कोन नफा गुन फागुन आबि, जकर प्रभाव प्रबल बल पाबि।
आमकेँ आमद आ' मदक निधि मजरक जे की काम-जरक चौपारिगे॥

[६९]

अबितहिं जे धधकैत पलाश-सँ-डाहय विरहिनि उल्लास।
आश न जीबैक, से ई आसन जमाय कचनार सँ देखावै चिनगारिगे॥

[७०]

रभसय सुम सौरभ सय बाँटि, भसय वियोगिनि चढ़ि-चढ़ि फाँटि।
संस्कृति-आकृति माटि मिलाय रहल-हाय! सुनाय जोगीड़ाकेर गारि गे॥

[७१]

बजबबैत डम्फा मिरदङ्ग, कर्ण विदीर्ण करै कऽ तङ्ग।
सङ्ग न कुरङ्ग नेत्र केर तेँ अनङ्ग-धर्म अंग चाह आह! ललकारि गे॥

[७२]

हो मन संवत जरइत काल, कुदि तैंमे बनि जाइ नेहाल।
परन्तु पहुक मुँह एक बेरि देखि लैक आशाकेँ सकी न निबारि गे॥

[७३]

अछि उत्कट चितमे अभिलाष, तेजि लोक-लज्जा आ' धाख।
जाइ हरि-निकट योगिनि बनि झट, किन्तु,नाथकेँ न पड़नि किनारिगे॥

[७४]

सुनिते बरहमासा, भेद नहि रतिओ मासा,
भानुजाक ई करुण-पुकार हरि निश्चय कैले॥

[७५]

तीन कोश गोकुल गामे, तैयो गोचर स्वर ग्रामे,
ह्री-तन्त्रीक तेहेन ने छै झङ्कार हरि निश्चय कैले।

[७६]

ई स्वर दोसर के पौते, जे की राधा बनि गौते,
ओ तँ सब गाइनि हृदयक हार हरि निश्चय कैले॥

[७७]

किंवा गोलोकोसँ हम, प्रिय-जन-दुख सूनी हरदम,
कतबो हो दूर अपार हरि निश्चय कैले ॥

[७८]

तेँ नहि कनिञो सन्देहे, आइ राधिकाक सदेहे,
मथि रहले मानस-पारावार हरि निश्चय कैले ॥

[७९]

तेँ तजि मथुरा-रजधानी, बचबी जा' एखने रानी,
नहि तँ दुखिनी केर जीवन पार हरि निश्चय कैले ॥

[८०]

कऽ निश्चय झट झटकि चलल जैँ गोकुलकेँ वनमाली,
आकुल-गोकुल द्विप्र जकाँ जोरेँ कहैत हा ! आली !
नाथक कण्ठ अकानि दूर रहितो उद्धव अतिज्ञानी,
दर्शन हेतु अबैत दौड़ला जनिकर नीति प्रमाणी ॥

[८१]

स्वर अनुसरण करैत शरण-वत्सलकेँ कनइत घेरि,
पद-पङ्कज पर शीश राखि कऽ एना किऐ पहु ! टेरि ।
एवं वद्धसिनेह, निषेधक सुनितो शब्द विशेष,
निज युगभुजाबद्ध कऽ आनल शपथो दैत अशेष ॥

[८२]

तथा तही एकान्त भवनमे आसन पर बैसाय,
पद पखारि चरणोदक लऽ कऽ नहुँ नहुँ वियनि डोलाय ।
दूनू हाथ जोड़ि अवनत भऽ पुछल चल सँ हीन,
की कारण, जगकारण ! असमय ऐ' नाटकक प्रवीण ! ॥

—:०:—

ते

र

ह

म

स

र्ग

[१]

साद्र नयन सविनय नय-कोविद उद्धव केर सुनि बात हे।
कुहरि ताकु हरि, बाफल-गर-फलकय सनीर-जलजात हे॥

[२]

दितहुँ प्रचुर आश्वासन मित्र तजै श्वास न द्रुत चालि केँ,
छन मे लकलक पातर सपुलक वेदन कैल वनमालि केँ,
सक भरि सम्हरितौहँ चलपत्रक पत्र गेलनि बनि गात हे॥

[३]

हिचुकि हिचुकि कहि चुकि खन बोल भरोसेँ बोल वहार हो,
पुनि हो बन्द, देव कहि जहिना कृपणक लुप्त बकार हो,
लख उपचार अलख लग लगले-हो घाघस-जनु प्रात हे॥

[४]

परम-समुत्सुक जिज्ञासुक जौं जौं गुरु-शिष्य बनैत छै,
तँ तँ हबोढकार भेल साकार-गोविन्द कनैत छै,
सृष्टि-बीज केर दुःख-बीज की भऽ रहले नहि ज्ञात हे॥

[५]

तें पुनि पवनव्याधि शपथ दऽ भक्ति-सरस-पथ-चारि जे,
त्रिपथगाङ्गिभ्रमधु - विपथगामि - मधु-सूदनकें, उच्चारि से,
वेद सकल-निर्वेद-निवारक-सूक्ति, कहल सुनु तात हे!॥

[६]

अपने नाथ निखिल-ब्रह्माण्डक नाथ हाथ मे राखि कऽ
त्रिदश साथ-चन्दन ! सुर मुनि कें माथ देखावी भाखि कऽ
त्रिविध-ताप सँ रहित सार हितकें बुझवी साक्षात् हे॥

[७]

सर्जन पालन लय युगयुग मे करी अहीं अवतार लऽ,
अगणित अकरी करी मारि नय अभिनय देखबी भार लऽ,
क्यो कहियो कहियो न सकल भागल हरि-हरि अवदात हे॥

[८]

पतितोद्धारक त्रिभुवन-पति पर विपति गयो पतिऐत कें,
स्वयं वि-पति स्मृत विपत्ति-निवारक से दुर्दश कहि पौत कें,
क्रीड़ा कोन निमित्त मित्र ! ई कहि करु दुख सँ कात हे॥

[९]

मधु-पुरीक प्रिय कान्हाकें क्यो-मधु पुरीक कटु बात सँ,
देत कलेसक लेश तकर-सम्भव नहि परिचय पात सँ,
ज्ञानि न थुरा रहल मथुरा कें कोन भावि उत्पात हे॥

[१०]

विक्रम-क्रम शैशवक तोर-हत चक आदिक इतिहास मे,
देव-पूत नाकस्थ कहै गप पूतनाक इतिहास मे,
व्याज सहित विधि-व्याजक उत्तर देलहुँ खेलवशात् हे॥

[११]

कालियकेँ निकालि यदुभूषण ! कालिन्दी-जल पेय कऽ,
मान मथल मघवाक, उठा-गोवर्द्धन. गोकुल-प्रेय अऽ,
गिरिरोधक भेने व्रजमे नहि बाढ़ि-जन्य आघात हे ॥

[१२]

दावानलक ढाहि दावा सब तैजस यशक निधान के,
तोर समान, निखिल जग मानय भा-नय-पति बढ़ि आन के,
बाल होइत बचि बाल-बाल-कत हतल निशाचर व्रात हे ॥

(१३)

आबि एतउ युगबन्धु, मारि गज-चाणुर मुष्टिक कंसकेँ,
माय-बापकेँ मुक्त कैल दऽ तिलक उग्र यदुवंशकेँ,
स्वर्गत-गुरु-सुत आनि दक्षिणा देल, यमो अरिआत मे ॥

(१४)

कहक योग यदि विषय, तथा सूनक हक हमर विचारि कऽ,
खोलि हृदय, बनि सदय दयानिधि ! कहु दासक दुख टारिकऽ,
आब न वनमाली ! बिलम्ब करु नहि तँ प्राणक पात हे ॥

(१५)

कतउ कदापि कोनो थिति मे तुअ कातर कानब कान की-,
कैलक क्यो कहु करुणासागर ! वा भागब भेल भान की,
आइ सालि - चीत्कार पलायन किऐ देवकी जात हे ! ॥

(१६)

भक्तक वश भगवान बशम्बद-केर दुराग्रह जानि कऽ,
आब छिपाय उपाय न प्रतिकारो हिनके सँ मानि कऽ
लगला कहय क्षोभ-हय-निग्रह करइत दृग्-वरिसात हे ॥

(१७)

धवल-कीर्ति प्रियबान्धव उद्धव ! हित के तुअ सम मोर हे।
नहि मानह तँ सुनह भक्तवर ! हमर दुखक नहि ओर' हे ॥

(१८)

मम सम घसल अदृष्टि दृष्टिगत सृष्टिमध्य नहि आन कें,
वर्णन करइत जकर एको की वर्ण न भेदत कान कें ?
काननस्थ - लोको सुनि कानत करुणा-घन से घोर हे ॥

(१९)

से निदान हम, छी निदान - छौ सोदर केर संहार मे,
जननी जनक क्लेश हमरे हित सहलनि कारागार मे.
अटल भाग्य-लिपि, भेटल नहि-जै' सँ निज माइक कोर हे ॥

(२०)

धर्म गमा तुल सद्विखन मातुल हमर मृत्यु केर ताकमे,
प्रकृति विकृति बनि कते घुमौलक उत्पाते केर चाक मे,
छला नहल महँ मातामह हम हित लऽ कऽ दृग नोर हे ॥

(२१)

नृपति-जात अति-नव-जातक भऽ विधि प्रेषित परगेह मे,
पालल गेलहुँ गोपाल कहा कऽ यदपि यथार्थ सिनेह मे,
आनक दुन्दुभि-सुत की आनक, कहइछ बहुतक ठोर हे ॥

(२२)

कते निशाचर दिवस निशा, चर बनल प्राण लै' लै घुमै,
ईर्ष्ये" विवश बसल स्वर्गहुँमे जाचक हित देवो झुमै,
विक्रम तरि सँ उतरि पार सब-यद्यपि आब किशोर हे ॥

(२३)

मुदा उदास रहै चित-जननी जनक दुलारो पाबि कऽ,
बधि कंसहुँ निरवधि जय पबितहुँ रही आधि नित दाबि कऽ,
सुख-समुद्रमे दुख-दावानल दृश्य न भक्ति विभोर हे!

(२४)

जे शैशवक समय महँ वक सम हमरे टा पर ध्यान दऽ
वृद्ध-वयस मे पुत्र प्राप्ति-यश-लऽ पालल अज्ञान कऽ
माय यथार्थ कमाय रहलि से, हम कृतघ्न, से शोर हे॥

[२५]

व्रत कऽ व्रतति समे पातरि जे कबुलि कते सुखवृन्द कें,
हित पुत्रक बुलि तीर्थ वर्थ मे पौल मोहि सुख कन्द कें,
ताहि यशोदाकें बताहि कऽ बनलहुँ हृदय कठोर हे॥

[२६]

दूबर कने देखि दूवर जे दुबराइत तखने छली,
खोआ किंवा साग खोआवथि, जौं अपने चखने छली,
छली केहेन हम, तनिको हिय मे विरहक देल अङोरहे॥

[२७]

दाइ माइ क्यो नजरि न लगवौ, तें लग बोधि रखै' छली,
ओझा गुनिक यन्त्र अगनित नित बान्हथि हृदयक निश्छली,
विमन कने लखि साग्रह जे ग्रह-शान्तिक करथि सङोर हे॥

[२८]

हमर उकठ सँ सतत सरागो – उपरागो सुनि कऽ भने,
दऽ मुसुकान, कान तकरे कऽ देथि मीठ मधु दऽ कने,
आ' सस्मिते वदन, हो वदन-एते, कहि बनथि चकोर हे॥

[२९]

काय नुकाय हमर आँचर सँ चट निकाय मे बन्द भऽ,
हर ! हर ! कहइत बाहर होथि न कर मे मम मुख-चन्द लऽ,
तेज नजरिवाली नहि तेजय-या' दुआरि केर कोर हे ॥

[३०]

अखरोटी पुद रोटी, दूध बकेने गाइक देथि जे,
उठा उठा चुचुकारि, चूमि मुख पूर्ण भाग्य बुझि लेथि से,
देल हुनक बिसरी नहि माखन-मधु-मिसरी नित भोर हे ॥

[३१]

जहिया हम बदललकरोट-भैरवक रोट देने छली,
दैत ठेहुनिआ, दैत-रिपुक पूजन कऽ पू जन कें लली,—
वितरण कैल, अमङ्गल भावि-तरण हित मुदित अथोड़ हे ॥

[३२]

देखि विकास कनेक हमर, सविकास काश हुनि ठोर हो,
गायक कोटि देथि श्रुतिगायक कें बुझि मनमे थोड़ हो,
देखि कलेसक लेश हमर हुनि होश हरै क्यो चोर हे ॥

[३३]

हम ललाम चलि मचलि चालि जैं आङ्न सँ बहराइ की,
भारी देह सदेह दौड़ि, जन-पृष्ट महरि ! भेल आइ की,
अस्त-व्यस्त स्वेद सँ स्नाता पकड़ि लेथि पट छोर हे ॥

[३४]

अछि औखन ओहिना मन ऐवा खन माखन खुअबैत जे,
साश्रुनयन पूछल निश्छल हिय-छी पुनि कदा अबैत से,
माँ ! झट ऐब कहैत बन्धु-युग, चललहुँ नगरी तोर हे ॥

[३५]

सत्तक तैं' माइक आ' बापक, सुधि नहि ली सुधि-मीत भऽ,
बाल-सखा सब प्राणतुल्य, तकरो तजलहुँ अनरीत कऽ
गोकुल गोकुल यमुना नीपक संस्मृति सतत नछोड़ हे॥

[३६]

वृद्ध नन्द आनन्दहीन-मति यशोमतिक लुटि गेल छै',
नन्दन-वृन्दावन बनलै मरु, दग्ध लता तरु भेल छै',
कहय कते हय चढ़ल पथिक थिक तोर कुकर्म अघोर हे॥

[३७]

वेणु-तान सुनिते उतान-जे तानय प्रेम-वितान रे,
अगुता नवे वयसमे निःस्पृह - से गोपक सन्तान रे
विना हमर मरणासन्ने भऽ रटइछ नन्दकिशोर हे॥

[३८]

बिना हमर अवलोकन, कनभरि कहुना खाय न घास जे,
कालिय-बद्ध देखि हुँकरै' छलि लऽ लऽ कऽ उच्छ्वास जे
भऽ गोपाल, पालन तजि तकरो-छी माथुर-धन-मोर हे॥

[३९]

माय, जनक, वा अन्य जनक हित दुखी जते, कहि देल से,
एखनुक तीर तते महुरायल तनुक हृदय विंधि देल जे,
हितहुँ बात कहितहुँ से ऊधो! टुटय चाह अश्रु-डोर हे॥

[४०]

कहि निरुद्ध-कण्ठाब्जनयन चुप, उत्कण्ठा-कण्ठाकुले—
पद-पङ्कज पर पतित उद्धवेँ पृष्ट, कोनहुना व्याकुले—
रहि रहि लगला कहय व्यथा केर कथा यथार्थ निचोर हे॥

[४१]

पाणि-पयोज पकड़ि प्रण पूर्वक जकर उठाओल भार हे।
पञ्चज पौरोहित्य कैल-पावक पजारि साकार हे।।

[४२]

वेद-विहित-विधि सँ विआहि बन्धनमे जकरा बद्ध कऽ—
पुष्पित-प्रीति-पराग-पुञ्ज सँ पूजनमे सन्नद्ध कऽ,
तेजि तकर कर नागर बनलहुँ, अछि बदि रहल अभार हे।

[४३]

साक्षी वट भाण्डीर, देखा ध्रुव जकर ग्रहण हम कैल रे,
सञ्चित - प्रेमोचित चित जकरा चितमे अप्पन धैल रे,
पत्र झरैत अकानि हमर आगम, से कानि निहार हे।।

[४४]

कण्ठ-हार कऽ दै बहार जे किछु विश्लेषे भावि कऽ,
सरसिज-सुरभि न आवौ, तेँ लगबैक केवारी दाबि कऽ,
विकट-वियोग-वह्नि झुलसावै तकरे सब उद्गार हे।।

[४५]

शाप-विवश गुरुजन-सम्पादित उपपति रहितहुँ गेह मे,
जे साध्वी सदिकाल रहथि हमरे टा सत्य-सिनेहमे,
तनिक अवज्ञा ज्ञान रहैत करावै हमर कपार हे।।

[४६]

तोड़ि सकल सम्बन्धक बन्धन लोक-लाज पर लात दऽ
गुरु-जन गुरु-तामस केँ मटिआ अपवादक डर कात कऽ
मम पिरीति-पीयूष-पान-रत, औखन जे अविकार हे।।

[४७]

रास आदि वहुतोक रास क्रीड़ा मे जे छलि सङ्गिनी,
तेजि हँसीक तरास-हमर दर्शन-तरास-विकला धनी,
कहितहुँ हो क्यो जी तरास रे, से उपेक्षिता दार हे॥

[४८]

दऽ कट मिलनक, उत्कट-सङ्कट-मे बुझितहुँ हृदयेशि कें,
जाइ न निकट, प्रकट सुख-वन-डाही विरहानल लेसि कै,
पुरुषक प्रति प्रतीति करते के, बुझि ई मिथ्याचार हे॥

[४९]

हम सुख करी, करीर-कुञ्जमे वेदन-व्याकुला राधिका,
भोगी राज पाट हम,—भोगी-युत-वनमे ओ साधिका,
राज्योन्नयन नयन छोड़ै मोहि, ओकर नयन सँ धार हे॥

[५०]

मम निर्ममता छलकय, जे हम छल कय मथुरा ऐल छी,
शरणापन्न विपन्न, तकर हिय-लुटि निर्दय बनि लैल छी,
भावि प्रेमि-प्रेमिका भावि ई कऽ उठते चीत्कार हे॥

[५१]

सोचल चलचित्तोँ हम ई,—चल जैव गोकुला छोड़ि जौँ,
हठ-रथ गोप-ललीक—लीकसँ हँटत अन्य हय जोड़ि तौँ,
छै' लोकोक्ति डीठ केर आगू पीठ वनै पछुआर हे॥

[५२]

किन्तु छलै भ्रम, भ्रमणशील नहि सती नारि केर शील हो,
सत्य-सिनेह-सूत्र केर बन्धन—धन, कथमपि नहि ढील हो,
आराधिका राधिकाकेँ लखि, सैह कहै संसार हे॥

[५३]

से एकान्त-वियोग-योगसँ तते उपर उठि गेल छै'
वाणी-वीण-तार-झंकृति सम वाणी गीते भेल छै'
मिथ्या नहि, एखनहि हम सुनलहुँ तनिके करुण-पुकार हे ॥

[५४]

दीन कान हम दीन-कथन पर तैं न सुनी तै' बातकें,
दीनबन्धु तँ मूको क्रन्दन सुनथि नयन जल पात कै,
कतबो दूर जाथि तैं लगले लग भक्तक श्रुति सार हे ॥

[५५]

कुम्हरा कीट भ्रमर दिशि तकइत टक टक, भ्रमराकार हो,
इच्छा-शक्ति प्रबल होइतहिँ हस्तामलके संसार हो,
सन्तत वेदन निवेदन कऽ ओ व्यक्त सुनौल, उदार हे ॥

[५६]

रहितहुँ दूरे सन्निहितहुँसँ बढ़ि न शब्दमात्रे सुनी,
दुखेँ खिआयल तनु दुखिआ केर—मूर्त्ति देखि नयनो मुनी,
तैं एखनुक वेदना-गीत सुनि रहि नहि सकल सम्हार हे ॥

[५७]

तौं नहि मोर पथक हो रोधक, पऽथक ओकरा काज छै'
शरणागतक अमङ्गलसँ—अपनहिँ कहु ककरा लाज छै'
एतऽ भाइजी संरक्षक,—हम छैब गोकुलाधार हे ॥

[५८]

भानुजाक सङ्गहिँ विनोद पुनि करब भानुजा-तीरमे,
वनमाला-वनमाला पहिरब, तजि कऽ हीर अहीरमे,
ने तँ नेह-इतिहास हास कऽ देत मोहि धिक्कार हे ॥

[५९]

ऐल धाम हरि, महरि देखि पुनि पल भरि पल न खसौत रे,
काय तुकाय हमर आँचरसँ उजड़ल भवन बसौत रे,
मनुज-सद्म-आगत पिक-छद्मक कऽ देबे संहार हे ॥

[६०]

वास्तव-पिता नन्द आनन्दक मन्दाकिनी-तरङ्गमे,
हेता निमग्न, गोपाल-बालसब नर्तन करत उमङ्गमे,
लेथु पुत्र, कहि खल खल हसइत खल पर पड़त अङ्गार हे ॥

[६१]

कते हजार कतेको युगसँ हृतमन गोपक बालिका,
उपहृत कऽ सर्वस्व मोहि औखन अछि बनल कुमारिका,
लाख काज तजि पूर्ण करब— अभिलाख तकर लऽ हार हे ॥

[६२ [

ततबे नहि, शिक्षासँ वञ्चित--निर्मल-चित-गोपालकेँ,
पठन पाठनक हेतु करक अछि पूर्ण यत्न गो-पालकेँ,
व्रजभरि आशु आशुतोषक--कृपयेँ हो विद्यागार हे ॥

[६३]

एवं गोकुल सँ मधुपुर-ऐबा हित यमुना धार मे,
भव्य-पूल बनवैब हमर अछि इष्ट पुनीत-विचार मे,
से या' तक नहि, यातायातक रहते कष्ट अपार हे ॥।

[६४]

गोप सकल भऽ सकल पकड़ि यादव केर पद्धति धीर हो,
पूर्ण नागरिक बनौ गुणेँ यद्यपि कुलजात अहीर हो,
तेँ नहि रोकह, चलते-गोकुल-नव-निर्मित उपचार हे ॥।

[६५]

सुनि वियोग-विह्वल वल अनुजक कथा उद्धवो धीर हे।
छन भरि पुलक-भरित मूके भऽ लगला कहय गभीर हे॥

[६६]

यदपि प्रभो! सर्वज्ञ अहाँ रवि शशिक प्रभो तुअ हाथ मे,
सृष्टिक रक्षा सृजन-विसर्जन केशव! सब अछि नाथ मे,
नीतिमान मानल ब्रह्माण्डक सब-सुर-संघक सीरहे॥

[६७]

किच्छु बुझैब ताहि अपने कें अपने मन मे लाज हो,
भानुमान-भानुक लग दीप देखैब समे जनु काज हो,
तदपि परिस्थिति थिति वनौल से बिनु बजने हो पीर हे॥

[६८]

रुद्ध लक्ष्य कार्यक विरुद्ध-पथ धऽ बढ़ैत निज नाथ कें,
जेन केन उद्यमे जे न रोकै उन्नत कऽ माथ कें,
सेवक से वक मीनमात्र केर ध्यानी, किछु हो नीर हे॥

[६९]

पति-कल्याण-चाक चलबै जे चाकर विमल विचार सँ,
नीक सलाह बिना पुछनहुँ दऽ थिति बुझैत नित चार सँ,
ताहि दास कें पावि उदास न भूप, नीति ई थीर हे॥

[७०]

श्रीमानक सेवाक भाग तँ अछि किछु हमरो भाग मे,
सानुराग तें मङ्गल मनवी रहितहुँ विषय विराग मे,
समय जानि अतएव कही जे; छमब वृष्णि-कुल-वीरहे॥

[७१]

कंस मारि बनि वीतचिन्त-पुनि प्रेमक चिन्तनमे अहाँ,
वनमाली ! वृन्दावन चललहुँ, आब परिस्थति से कहाँ
बेटी ओकर मगहकेँ गहलक चलबै नीतिक तीर हे ॥

[७२]

सूनि जमायक निधन, यमाय–करै उद्यत निज रूप केँ,
पिता पितायल तोरे माभिक, नोत पठा खल भूप केँ,
साजि रहल सेना मथुरा हित मागध-दल वेपीर हे ॥

[७३]

जौँ सक्षेम रहक अभिलाषा, राखी योगक्षेम केँ'
केवल योग क्षेम वा नहिएँ राखत जीवन-टेम केँ,
रक्षा-दक्षा-शक्ति-उपेक्षा-सँ हो रमा अधीर हे ॥

[७४]

शत्रु अबल वा सबल, न कथमपि थीक उपेक्षापात्र ओ,
साधारणो रोग अनठौने दूषित बनबै गात्र ओ,
जरासन्ध तँ नामी गामी गति मे शुद्ध समीर हे ॥

[७५]

एवं काल यवन परसेना - वन - दावानल ख्यात जे,
पता गुप्तचर सँ लागल अछि सदल अबै' अछि स्यात से.
अचिर भावि चिर सञ्चित सैन्यक हरि ! मधुपुरमे भीर हे ॥

[७६]

एहि समयमे मधुपुर तजि-मधुरिपु कहुँ जैवो हो तेना,
घरमे आगि लगाय भागि कऽ अपने जैवो हो जेना,
औखन एतऽ विपक्ष-पक्ष केर भेटै गुप्त तसवीर हे ॥

[७७]

एखन नीति-सम्मत मत-दुर्गम-दुर्ग कतहु बनबौल जै,
समय पाबि, पाबित - माथुर - जनकेँ तै' मे रखबौल जै,
हारि हारि सै वेर लड़ै ओ दुष्ट पड़ाओल कीर हे॥

[७८]

पाणि पकड़ि करिगमनी-राधा-केर त्याग सँ पाप हो,
असह-विरह-दग्धा-सुमुखी केर दुःखेँ अति सन्ताप हो
कहल अहाँ जे हलधर बान्धव! सुनु उत्तर गुण हीर हे॥

[७९]

तोर सतत अनुरक्त भक्त श्रीदामा सँ ओ शापिता,
अप्रतिकार्य - वियोग - वह्नि सँ रहती तेँ सन्तापिता,
हरिक वाक्य हो हरिकभक्त केर तँ भाग्यैक लकीर हे॥

[८०]

एवं खल-दल-दलन, साधु-रञ्जन हित आयल छी अहाँ,
गोकुल रहि कुल सठत योजना भेल रास रणमे कहाँ,
रङ्गरभस-रत रहि रिपु मारब से तँ टेढ़े खीर हे॥

[८१]

शुद्ध यशोमति नन्द यशोमति पालि माय आ' बाप जे,
तनिका लग रहि सकब न मोहन! एतऽ उठत सन्ताप से,
भस्मसात व्रज मधुपुर दूनू लड़ि रजपूत अहीर हे॥

[८२]

तथा किच्छुए दिन दुर्दिन मे गोकुल रहि गोपाल मे—,
गणित होइ अगणित खलदल सँ यदपि दोष नहि वालमे,
पुनि प्रस्थान एतऽ सँ कैने सब बुझते आभीर हे॥

[८३]

वाद-विवाद बादमे बढ़ने सामाजिकता क्रान्ति सँ,
अहाँ लोकमे अच्युत जातिच्युत बनि रहब अशान्ति सँ,
चीन्हत के ऐ' आदिपुरुष केँ पैर जकर जिंजीर हे॥

[८४]

तेँ दानवप्राय मानवपति केँ मारब जौँ इष्ट हो
पृथ्वीभार उतारब, भक्तहुँ तारब अपन अभीष्ट हो,
प्रेम-पाश केँ तोड़ि, प्रजा—पालन दिशि बढ़ु सुस्थीर हे॥

[८५]

सविनय नय-रससिक्त वचन उद्धव मथुराधव केँ सुना,
पाद-पद्म-पर माथ राखि कऽ नीरव, किछु मुग्धे बना,
हरितपीड़-हरि लगला बाजय नीरद सम गम्भीर हे॥

[८६]

अहो बन्धो ! ऊधो ! निरखि नय-नेत्रे सब अहाँ,
निचोरे ह्रच्चोरे कहल, सकते क्यो कहि कहाँ।
छलौँ मायाजाले पड़ि वुध वेहाले अति दुखी,
बना मुक्ते, मुक्ते सम यश लेलौँ कऽ अति सुखी॥

[८७]

एना वुझाय सुझाय दितहुँ नहि जौँ प्रमाद-वश धीर !
प्रेमक मादकता-वश सेवितहुँ जतऽ वसय आभीर।
जाहि कार्यहित देह सहित धऽ ऐलहुँ तजि गोलोक,
सब पिरीति-उत्सवमे सठितै हसितै दुर्जन लोक॥

[८८]

आब न वनब छनहुँ भरि आकुल सुनि गोकुल केर नाम,
जरौ कोटि नारी वा उजरौ व्रज आ' मधुपुर धाम।
जाहि निमित्त मित्र! अवतरलहुँ करबे से सब पूर्ण,
बाधक बनत स्वयं अवनत वा कऽ देवे हम चूर्ण॥

[८९]

मुदा उदार-हृदय तोँ बान्धव! काल्हि गोकुला जाह,
अपन विराग-राग सँ रोकह गोपिक रागप्रवाह।
छललि अम्ब आ' वृद्ध पिता केँ दऽ पूरा अवलम्ब,
कोटि प्रणाम हमर कहि बोधह उद्धव! कहि हेरम्ब॥

[९०]

रहि विरहिता-प्रेयसीपुर मे किछु दिन तजि सब काज,
प्राप्त करब हे आप्त हमर, साधिका-हृदय निर्व्याज।
देखब कहुँ ओझराइ अहूँ नहि तेहेन पिरीतिक जाल,
रङ्ग श्यामले टा जनैत अछि जाहि ठाम आवाल॥

[९१]

सुमिरण हमर करैत मरण जिति समाधिस्थ जैं काल,
रहै चरित्रोज्ज्वल मम सहचरि टोकक थिक न रसाल।
जप तप संयम नियम पालियो ई न अवस्था लभ्य,
एहि दशाक बिना न दशाकृति सेवियो मुक्त सुसभ्य॥

[९२]

की विशेष कहु, बुद्धिमान केँ सङ्केतक टा काज,
प्रिया लोकनिकेँ कहबनि हित बनि. करी न कनिञो व्याज।
राज-काज केर झञ्झटि हटितहिँ झटिति गोकुला ऐब,
रहु ता' धैरज धै, रज व्रज केर हमहूँ माथ लगैब॥

[९३]

माय बाप प्रियतमावृन्द वा क्यो नेहँ किछु वस्तु,
दिऐ अबै' खन तँ नहि छोड़व, लेब सकल कहि अस्तु।
ताहि सनेसक समता सृष्टिक किछु न करत सिद्धान्त,
कहि निवारि सकला न वारि वारिजयुग सँ श्रीकान्त॥

[९४]

नाद-विन्दुमे रमल सदा सँ रहितहुँ उद्धव धीर,
निश्छल से छल करुण-नाद आ' बिन्दु जलक गम्भीर।
उब-डुब होइत उबरि हँऽ कहले शुभ सङ्केत करैत,
शीस डोलाय असीसक भूखल विरज चरण रज लैत॥

—:o:—

चौदहम सर्ग

[१]

लुक-झुक भानु, सूचना साँझुक, दैत भानु झुकले भऽ क्षीण,
हरित-नगीय-वृक्ष-फुनगी पर, छवि न गीय से बिना नगीन।
प्रकृति अपन कृति-कुशल पुत्र हित नभ-मलसी मे लोहित-राग,
उबटन सानुराग लऽ लगबथि, विहग-वधू सँ सन्ध्या-राग॥

[२]

शावक वकसम अहरा हित, आबक पथ जकर तकैत हेतैक,
से खग खगल-कुटुम्बी सम, उड़ि रहल, मनक गप के बुझतैक।
हाँजक हाँज खोँज अपना मे, कऽ जनु पहिनहिं, कलकल नाद-
सँ अकाश केँ गुञ्जित करइछ, लऽ झट मिलन केर उन्माद॥

[३]

हरित-कान्ति वन केर हरित कऽ, बना देलक क्यौ लाले लाल,
वामपथक की अथक प्रचारक, सभक, वसन रङले दऽ आल।
की अनुरक्त सृष्टि-रचा मे, सूर्यक रक्तक महिमा थीक,
व्रजवनिताक विरह-किंवा, वह्निक ज्वाला विस्तृत से ठीक॥

[४]

किंवा बदलल सृष्टि, सत्त्व तम केँ जैँ दलल रजो गुण आबि,
जल थल नभ कणकण मे लाली देखि रहल छी जकरा पाबि।
श्यामल-सलिल-साटिका तजि लालसा लालसाड़िक कऽ पूर,
संन्यासिनी-समाना सूर्यसुपुत्री, स्वामी जनिक सुदूर॥

[५]

क्षण भरि पूर्व विलक्षण जे लालिमा सबहिँ केँ कैलक लाल,
होइत तिरोहित रवि, अन्तर्हित रोहित वर्णे, कह आबाल।
लाली सरि भऽ पसरि सकल थल देखल सबकेँ लाली-हीन,
व्रज-निकाय सँ तेँ नुकाय की लेल क्षाय क्षमताक विहीन॥

[६]

बेकत नीरवे कत तारागण गगनक आङन मे भऽ गेल,
विरहविदग्धा-गोपिक दृग्-ताराक नकल मे की रत भेल।
किंवा श्रीराधाक असाधारण विरहज्वाला मे पाकि,
गगनक देह सदेह व्रणाङ्कित, के न जैत अङ्कन मे थाकि॥

[७]

वन्दनीय-पति-पाणि-परस बिनु बन्द कैल कमलिनि मुहँ आब,
कुमुदिनि समुद कुमुद केँ उगितहिँ, दूनू समयक थीक प्रभाव।
गो-खुर धूलि-धूसरित-नभ थल, घर घरसँ भेल धूम बहार,
माल जाल चरबाह हाँकि कऽ चलल डगर धऽ कऽ सोदार॥

[८]

चमकय छमकय नेरु, मकय वृष, चलि ठमकय लऽ ऊधस भार,
स्रवित-दुग्ध परिपुष्ट धेनु घंटिका रणित, साटी श्रृङ्गार।
गमकय तीमन मध्य देल घर घरक छौंक, रमकय मृदु वायु,
द्विजहुत हुतवह-ज्वाला दमकय कम कय सकय न जैं यमआयु॥

[९]

पनिघट सँ घट भरि भरि घटवक्षोजा केर चलैत कदम्ब,
करै परस्पर नहुँ नहुँ गप गोपाले विषयक लऽ अवलम्ब,
कतउ गरंगों गोदोहन-मधुरस्वन सुखद बनै पड़ि कान,
वत्सल-वत्स गायकेँ चाटै कऽ चुकले अछि जे पय पान॥

[१०]

कहुँ शिशु-लीला ललित मुकुन्दक कऽ रहले क्यो दैत बतान,
कहुँ गोपक सन्तान चरित-कृष्णक गबैछ दऽ विरहा तान।
बूढ़ सूढ़ कहुँ बुझबथि सबकेँ जनु विलाप करु औता श्याम,
कतउ दलक दल दौड़य गोपी 'कहाँ कान्ह कहि' हप ललाम॥

[११]

ई सन्ध्याकालीन कोनो दिन दृश्य देखैत महान चरित्र
गोकुल गाम प्रवेश कैल उद्धव स्यन्दन सँ होइत पवित्र।
घड़ घड़ शब्द रथक सुनि दौड़ल कान्ह ऐल गुनि तजि सब काज,
बनमालीक विषम-विरहेँ छल जरइत जकर हृदय निर्व्याज।

[१२]

बन्धन दैत अपन गोधन केँ तजि डोरी भागल बुझि भाग,
गाय दुहब तजि दौड़ल, आगत गीला-गायक जानि सराग।
पानि भरैत इनार कूप सँ तेजि तहीमे उगहनि डोल,
लैत निसास अधीर दौड़ली कखन देखब पहु कञ्जकपोल॥

[१३]

कते घैल तमघैल भरल गोपीक माथ सँ खसि फुटि गेल,
कते परस्पर टकरैतहुँ बढ़ितैहँ रहलि पहु दर्शन लेल।
कते दैत जलपान स्वजन केँ पड़ितहिँ पहिआ शब्दक कान,
भोज्य सनाथे हाथे देखक हित नाथे केँ तजल मकान॥

[१४]

डोरी तोड़ि नेह नेरुक तजि उठा पुच्छ लऽ नयन नोरैल,
दैत हुँकारी कारीवपुहित गायो कते दौड़ि कऽ ऐल।
कते बूढ़ असमर्थ घरे सँ कहै चिरंजीवौ नन्दलाल,
फेर न भाग्यक फेर देखाबौ विधुविहीन व्रजवासिक भाल॥

[१५]

मुदा मग्न सत्यानुराग-गंभीर-तड़ाग मध्य हरि हेतु
पहुँचल जे जे चञ्चल गति सँ, तोड़ि वारि बाढ़िक जनु सेतु।
नहि सञ्चित केँ देखि विकल चित मानल वञ्चित कैलक भाग,
पड़ले रहल कते हलधरबान्धव रटि या' प्राचीक न राग॥

[१६]

सरल सिनेह-सुधाक सिन्धुमे उबडुब गोपवृन्द केँ देखि,
परम विरागी होइतहुँ, अनुरागी महान निज मनमे पेखि।
प्रेमक पथ धय बोधय लगला जनगनकेँ उद्धव तत्काल,
सत्ता हरिक महत्ता श्री व्रज भूमिक व्यक्त करैत रसाल॥

[१७]

धन्य अहाँ सब हरिगुण-वर्णन—उत्सव मे लागल दिन रैन
दर्शन-जनक जनिक दर्शन हित बनल मघाक मेघ युग नैन।
तुअ पद-रज थिक रजक, पातकी—पाप-पटक अकपट ई बात,
धन्य गोकुलो जतै गोकुलो पूत नन्दपूतक पड़ि लात॥

[१८]

एहि प्रकार विकारहीन कहइत गप सजल विलोचन भेल,
निर्झर-नयन-अपार-गोप—जनताक शङ्क करुणान्तिक गेल।
नन्द-निकेतन-निकट पहुँचला वृष्णि-वंश केर मन्त्रिप्रधान,
वरुणालयक समान जाहि ठाँ छल करुणाक प्रचुर तूफान॥

[१९]

सुनि सुत-सुहृद-शुभागम हरिमे विकल विकल सब स्वजन समेत,
चिन्ताक्रान्त नन्द उद्धवकेँ स्वागत कऽ लऽ गेला निकेत।
तीनि घड़ी निशि सूचित कैलक वाजि घड़ी घंटा तै' काल,
उत्तम जकाँ छलै तम पोतल व्योम व्रजक गुम्मे आबाल॥

[२०]

आश नवे लऽ शुभ आसन दऽ तै' पर उद्धव कें बैसाय,
सजल-नयन, निर्मल-जल लऽकऽ धो पद घरघरमे सिचबाय।
भोजन करा, कराम्बुज सुत बुझि पानदान आगाँमे राखि,
करितहुँ यतन विशुद्धि-आयतन महर न छनभरि सकला भाखि॥

[२१]

दूबर परस तहूसँ दूबर चढ़ि चिन्ताक चिता पर झूर,
आनन आन न चीन्हि सकै' छनि, छनिको शान्ति सदच्छन दूर।
से व्रजराज, मूक सुतविरहें एवं टूक टूक ही केर,
पान-पात-सम पातरि महरी नोरक वृष्टि करै' छथि ढेर॥

[२२]

उदासीक प्रतिमा सब दासी गृहबासी सम बासी फूल,
हरि-वियोग-वड़का-वारिधि केर एहि सभक हित कहुँ नहिं कूल।
रक्षक एकमात्र भगवाने, सैह देथु वाणीमे शक्ति,
बोधि सकी हिनका सबकें हम, देखा सेवकक सात्त्विक भक्ति॥

[२३]

ससम्मान श्रद्धा सिनेहसँ सानल सुखद सुधाक समान,
विकट-वियोग-व्यथाक विघातक सोचि कथा कहलनि मतिमान।
मायामय संसार, सार केवल ऐ'मे हरिचरणक ध्यान,
पिता पुत्र बनितादि समन्धक बन्धन रहइत हो नहि ज्ञान॥

[२४]

बिना ज्ञानसँ जन्म मरणकेर चाक घुमाबै कोटिक कल्प,
तें मुक्तिक हित अहित बुझी सम्बन्ध विश्वमे जते अनल्प।
हरिपूर्णावतार भवतारक, क्यो हिनका छनि अपन न आन,
भक्तक उपर अनुग्रह, दुष्टक निग्रह टा रुचि हिनकर जान॥

[२५]

धन्य अहाँ दम्पति, पतिआयत के राखल जे एतऽ बभ्माय,
बान्हि सिनेह-सूत्र सँ विभु कें एतबा दिन मा पिता कहाय।
आब सृष्टि-रक्षाहित ततबा काज हुनक सम्प्रति बढ़ि गेल
निकटवर्त्तियों कें कट दऽ कऽ दरस न दऽ पाबथि, से खेल॥

[२६]

तदपि गोकुला-वश्य नाथ मम अम्ब ! अवश्य शीघ्र औताह,
किछु दिन रहि पद-कमल सेवि तव आज्ञा लऽ मधुपुर जैताह।
तें चिन्ता तजि युगल कुमर केर शान्ति ग्रहण करु धैरज पाबि,
ओतहु बन्धु युग रहथि तदपि जगती कहैछ तुअ सुत गुण गाबि॥

[२७]

विनय भरल नय-निकष-चढ़ल, पीयूष गढ़ल उद्धव केर बात,
सुनि सुनि कम्पित भऽ भालरि सम महरि ठोकि शिर कहलनि तात !
कोमल श्रवण-सुखद हितकारक नीतिबद्ध यद्यपि तव बोल,
सुत - सुख-सम्मुख ज्ञान विरागक बातो सुनितहुँ हिय मम डोल॥

] २८]

कहइत बाझल कण्ठ, धसल-लोचनसँ-झरझर झहरय वारि,
चित गह्वरित, कोनहुना सञ्चित धैरज राखि सकथि नहि हारि।
पुलकाञ्चित सचित-सखाक सिसकी सुनि मुदा सम्हरि हरि-माय,
कुहरि कुहरि लगलीह कहय पुनि, किछु दुखकम, निजजन दुख पाय॥

[२९]

सुनि सुनि कते समाद सुनिश्चित-ऐब, ताकि पथ दृक् पथराय।
अबइत कोनो पथिक लखि मथुराधिप थिक बुझि आशा लतराय।
किन्तु पलेमे कपले छाती, आशा-वल्ली झुलसि झमाय,
मानय हारि तदपि नहि-दऽ विश्वास श्वास रोकै मम हाय॥

[३०]

रोगाकुलक कानमे क्यो की कुल दबाइ केर कहि कऽ नाम,
सकत दवा किछु व्याधि–विना भैषज देने बुझितहुँ परिणाम।
दग्ध होइत भवनक सन्निधि की निधि-नामेसँ आगि मिझैत,
बिना पाबि स्वाती-पावित जल चातकीक की प्राण जुड़ैत॥

[३१]

आब समाद सुनैक न मादकता ऊधो! हमरा रहि गेल,
प्रतिदिन श्रवण करैत श्रवण–सन्देश जेना सव्रण अछि भेल।
कान अकानय ठुमुक–गमन टा बिना आगमन कानय प्राण,
मन-मनबय मनमोहन–दर्शन जकर राज कर पद्म समान॥

[३२]

सन्देशोक महत्त्व नूतने - विरह-शोकमे विश्वसनीय,
अवधिक वधिकक चिर वियोगमे संवादो नहि संस्पृहणीय।
आब न वनमालीक मुखाम्बुज देखत या' भमरा दृग् रूप,
कथमपि ककरो कोटि-कथनमपि दऽ सकते नहि शान्ति-सरूप॥

[३३]

वत्सलताक लताक वत्स ओ थीक सौरभित-सुमन सहास,
सुजनताक प्रतिनिधि गुणनिधि जनताक आश, दीनक विश्वास।
विनयं पाबि नय कमल नयनमे विश्वोन्नयनक क्षमता देल,
किन्तु भाग्यहीना यशुदा तँ दिनुका दीना हीना भेल॥

[३४]

करुणा करइत देखि कतउ–ककरउ-करुणा कर हो उद्विग्न,
अपन माय वृद्धापन–पीड़ित सुतहित शोक–सिन्धुमे मग्न।
तकर उपाय करै नहि मोहन, मोह न पहिल कनो भरि आब,
झरकबाहि क्यो आहि! लगौलक झरकाही, तेँ विस्मृत भाव॥

[३५]

कृष्णचन्द्र राकाक चन्द्र-मधु-चयसँ सीचय जगकेँ आज,
विरह-फन्दमे पड़लि-माय केर बन्द वदन जनु कमल समाज।
करय तकर नहि ज्ञान एहेन तँ निर्मम मम कान्हा न छलैक,
वातावरण सगर नगरक की देल आवरण हाय! छलैक ॥

[३६]

सहृदय सुतक सुबुद्धि-सखा तोँ सौम्य-समाद सुपुत्रक आनि,
मञ्जु-मधुर-ममतामय - बोलेँ बोल-भरोस दैत दुख जानि।
मुदा जाहि फणि केर छिनल मणि जीवन तकर कोना रहतैक,
सदिखन सरल बालवर्गक कान्हा कत? पुछने की कहतैक ॥

[३७]

कहह मार कत अपमानित-जकरा सँ से मारकत समान
आ' कर्पूर गौरवक जेता गौरवरण जे से द्युतिमान।
हमर कुमर युग; युगक विधाता विहरय मुदित स्वस्थ सदिकाल?
कौखन तँ नहि आधि व्याधि केर छायोमे पड़ि मुरझय लाल ॥

[३८]

मुगबा मेनमा कौर बना कऽ के खुअबैत हेतैक दुलारि,
पय वकेन गायक जगाय भोरे पिअबैत हेतै' पुचकारि?
माख न ककरउ, गाम भरिक माखन लुटि 'खा' 'खा' भोज करैत,
गोकुल जकाँ स्वतन्त्रताक अवसर विनु मुहठा हैत बनैत ॥

[३९]

खान पान असनान खेल-सब पर हम समयक कऽकऽ ध्यान,
साध न आनक साधन लऽ लऽ करी उपस्थित मुख अम्लान।
ओहि ठाम के एना आन क्यो रहि सकतै सदिखन तैयार,
पुत्रक रुचि आ' अरुचि-रुसब बौंसब जनैछ मा टाक पिआर।

[४०]

नव नवनीत, रुचिर-रुचिकर फल देखितहिं कान्हक भोजन योग,
खाइ न तैं' दिन-राति बचा जन आँखि रही कनिते जा' दोग।
चौंकि उठी ककरो पद-धुनि सुनि देखि न हरि शिर धुनि रहि जाइ,
सविवर वंश वसात वशात-हकन्न कनाय रहल अछि आइ॥

[४१]

मञ्जु-मधुर-विश्वक मनमोहक मनमोहन मुख मुखरित भेल,
सुधा-स्रोत-सङ्गीत-सरस-स्वर सृष्टि मुरलि मलिना भऽ गेल।
होइतहिं लोचन-गोचर, सुधि बुधि-छीनि बनावै पागलि रूप,
श्याम न पा' गलि राङ समा बनि नोर बहाबी सूपक सूप॥

[४२]

नहुँओँ चाट एको न लगाबक-चाट छलै, जैं होइत उचाट,
गञ्जन करितहुँ कोना-मनोरञ्जन न धैल कहियो से बाट।
वा केहनो अपराधो मायिक छमब अमायिक सुतकेँ थीक,
व्यर्थ अदोषाकेँ दिन दोषा-भरि कुहरौने लाभ कथीक ?॥

[४३]

पाकल आम भेलौहँ न पा' कल विरह-विहाड़िक जोर ततेक,
तुबि जैबे हम सह महरक रे छूटि जेते झट टीस जतेक।
मुदा हजार हजार गोपिका आ' गोपाल बालक एकान्त,
सत्य-सिनेह-सिन्धु शोषित भऽ व्रजकेँ मरु कऽ करत अशान्त॥

[४४]

तथा श्याम नामक टा माला, जपि जे बाला बनलि बताहि,
की नव ताहि देबै' सन्देशा आहि ! काटि रहले जे काहि।
वय नूतन विरहैँ जर्जर तन, तैं' राधोकेँ विसरि गेलैक,
गाड़ि वारिवय रहति कोना-से सोचि मुहाँ देखबय न एलैक॥

[४५]

ललित-लता-तरु-लसित-अमित-फल नमित,सुमन-सुरभित-सदिकाल ।
बनमालिक विसरल वृन्दावन दृश्य होइछ जनु पड़ल अकाल ।
मुरलीसँ मुखरित यमुना तट-निकट आब जैतौहँ सकाल,
कालस्वसा थिकी ई निश्चय भान करै ऊधो ! आवाल ॥

[४६]

पोषित-कीर-पिकी रत सदिखन 'कहाँ श्याम' रटमे सोन्माद,
मेना कोन कालमे नाको दम न करै कहि विरह विषाद ।
वंशीमे सुनि गायन जे की गाय न चरै पाँति कऽ कान,
भेलि मुक्की ठकमुकी लगौने, खनहिं हुँकरि से कान अकान ॥

[४७]

के कहि सकते ? कते रातिमे चौंकि निन्नमे सब व्रज केर
'आयल हरि' चीत्कार एके बेर कऽ भौहरि कऽउठै अनेर ।
कोनो पर्व पावनि अबिते पर्वत समान प्रतिपल बनि जाय,
हाय ! सहाय न देव पितर क्यो,नीक निकुत कनिते भसि जाय ॥

[४८]

ऊधो ! ओ दिन रैन देखि सकते कथमपि नहि दुखिया नैन,
ओतऽ सुनावै नन्दक नन्दन नहिएँ पहिलुक मधुमय बैन
कदमक तर विरहेँ एकदम गोपी कदमक अहिना दिन जैत
बाल वर्ग पूर्वक अपवर्ग सुखक चर्चे मे समय वितैत ॥

[४९]

मनक मनहिं रहि जैत कन्हाइक व्याहक सुखद कल्पना मोर,
सम्भव नहि ऐ' भवमे पुतहुक देखब, वा पौत्रक युत कोर ।
हा ! बुढ़ारियोमे न छुटत बाढ़निदऽ चिनमारक निपनाइ,
विफल जोगा कऽ राखल गहना मुहँ देखना केर तथा गढ़ाइ ॥

[५०]

मारि करीन्द्र, कंसहति, देवकि-वसुदेवहुँ केर वन्धन खोलि,
सुखी कैल मधुपुरकेँ से तँ इसरे यश कह सब जी खोलि,
मुदा न आबय तहिआ सँ, दुख तहिआ-तहिआ राखु कतेक,
के कहि सकते पुत्र वियोगेँ मायक उरमे व्यथा जतेक ॥

[५१]

रहौ कतहु अनके सुत बनि कऽ, करौ सतत अनके कल्याण,
रहौ चिरञ्जीवी युगवान्धव, आब मनोरथ अछि नहि आन
ऊधो ! एक बेर टा बेटा कञ्ज कपोल देखाबौ आबि,
विकल प्राण-पत्ती उड़बालै, तही हेतु रखने छी दावि ॥

[५२]

परम सिनेही पुत्र बन्धु हे ! तोही प्राणक रक्षक एक,
मोहन-मूरति-श्यामक सूरति आनि देखाबह अहह ! कनेक।
हँऽकहि दैह, एते दुख कहियो की कहियो हेते अवसान,
हुक-हुक करइत आशा दीपक मे कऽ दैह सिनेहक दान ॥

[५३]

कहि कनैत सिसकैत पड़लि पृथ्वी पर यशोदाक सब बात,
नन्द अपन नन्दनक विरहमे सूनि साश्रु, अति कम्पित गात।
बलेँ खखासि कण्ठ, ढाढ़स कऽ झहरबैत झरझर झर नोर,
विह्वल, पीड़ँ परम अवल लगलाह कहय किछु कपइत ठोर ॥

[५४]

ऊधो ! कते यतन सँ ई आयतन भेल सुत-रतन-सनाथ,
कऽ अनाथ चल गेल बुढ़ारी-मे जनु तोड़ि पैर ओ हाथ।
शैशव-समये सँ साहस केर-काज कैल जे रहि ऐ' ठाम,
धीर वीर सुनि हो अधीर, बनि गेल चकित चित सौंसे गाम ॥

[५५]

छल निशीथ, बुझि भोर एक दिन देल डूब यमुनामे जाय,
क्रोधेँ अरुण-नयन वरुणक चर निशा-स्नानकेँ जानि वेजाय।
पकड़ि धकड़ि लऽ गेल पाशी लग, क्यो न भेल रक्षक तैं ठाम,
संगी सकल सेवको सब भय-कम्पित कानि पड़ायल धाम॥

[५६]

हरि सुनि सङ्कट विकट मोर द्रुत जाय वरुण सँ पूजित भेल,
आनल छोड़ा, तही दिन देखल क्रोधेँ आनलद्युति भऽ गेल।
आ' गोपाल दिग्पालेँ संस्तुत देल हुनक बहुतो उपहार,
लऽ कऽ प्राण बचौल हमर बुझलहुँ हम ई तँ जगदाधार॥

[५७]

अहिना पूजा काल कोनो दिन अहि विशाल देखवामे काल,
दहिना पैर पकड़ि कऽ छनलक कटइत फुफकारो विकराल।
देखितहुँ एहेन अनिष्ट, इष्ट-वा' बन्धु कियो कऽ सकल न त्राण,
नचबक तर्क वितर्कहिंमे सब हमर अवग्रहमे छल प्राण॥

[५८]

कोलाहल हलधरक बन्धु सुनि दूरे सँ द्रुत पहुँचल धाय,
देखि ऊक लऽ ओकर युक्तिसँ दग्ध कते ठाँ कैलक काय।
जैँ ओ मूहँ बावि पद छोड़ल कऽ संहार ओकर, धृतहार,
पाछाँ कऽ उपचार कते अशु बचा, बचा राखल संसार॥

[५९]

अवहेलित सुरनाथ क्रोध कऽ साम्बर्तक पुष्कर केर सङ्ग,
पाथर वज्र पवन उनचासो लऽ, ऐरावत चढ़ि सोमङ्ग-।
व्रज-विध्वंस करकहित ऐला ठनकल ठनका, करका पात,
उठल विहाड़ि वृष्टि मूसल, सब-हैत निपात, तेहेन उत्पात॥

[६०]

कऽ ऊठल चीत्कार सबहिं जन पाहि पाहि भट गोकुलनाथ !
कुल अनाथ भऽ रहल स्वजन तव मघवा तेना उठौलक माथ।
सुनि करुणा-क्रन्दन जगवन्दन गोवर्द्धन गिरि लऽ निज हाथ,
राखि सात दिन व्रज बचौल, पद-नत सुरपति, हम भेलहुँ सनाथ॥

[६१]

एहने कते काज कौतुकमय कऽ ककरा साश्चर्य न कैल,
पीबि स्वयं दावानल वनमे ग्वालबाल वृष गाय बचौल।
जहिना मुदा बचा दुर्दिनमे छल जुड़बैत सुखित कऽ प्राण,
तहिना विकट व्यथा दऽ सम्प्रति निर्मम मम सुत करय न त्राण॥

[६२]

घुला घुला मम प्राण अन्त करबाक ओकर जौं छलै' विचार,
वा मूहों न देखैवे कहियो माय बापकें बना नचार।
तँ पहिनहि नहि किऐ मृत्यु-मुखमे तजि देलक छलिया श्याम,
तखन एहेन दुःस्थिति नहि देखितहुँ निशि दिन पाबि विरह उद्दाम॥

[६३]

विभु - विरह - वेथा - सँ पूर्ण - रोमाञ्चकारी
करुण कथन अन्ते हो न से रूपधारी।
एम्हर देलनि लाली पूवमे अंशुमाली,
निशिगत अवगत कऽ तेजि वार्ता प्रणाली॥

[६४]

नन्दसहित चललाह, उद्धव दैनिक-कृत्य हित।
लऽ हिय विषमे आह, जकर प्रवाहक अन्त नहि॥



पन्द्रहम सर्ग

[१]

दैनिक-कृत्य समापि एक दिन, श्याम-सखा अतिज्ञानी।
मापि सकथि नहि व्रज-सिनेह जे भावक अनुसन्धानी ॥१॥
कान्त परम एकान्त यमुन-तट पर देखैत वन-शोभा।
कर्ण न तृप्त, जकर आकर्णन बढ़वै सूनक लोभा ॥२॥
आगत ककरो गीत - सुधा - सिञ्चित - सुस्वर - अनुगामी।
कुसुमित - कानन - केर कोनो कुञ्जक लग दैत प्रणामी ॥३॥
तही - निकुञ्ज - स्थित किछु युव गोपे मे ककरो गाना।
लगला छपकि सुनय, सुनयन-हरि-विरह-टीस बुझि बाना ॥४॥

[२]

कतय हमर मरकत-छवि रे शोभित - वनमाल।
जे चर अचरक पालक रे चरवय वन माल ॥१॥

भूषित करय सखां कहि रे अपनहिं जे नाथ।
भू-शित तकर लिऐ नहि रे सुधि विबुध - सनाथ ॥२॥
अछि ओ दिन ओहिना मन रे सङ्गहिं सब बाल।
रवि - तनया - तट ऐला रे तन चलित - तमाल ॥३॥
दूषित असित - नदी - जल रे, कालिय - कृत जानि।
जे पिबि जीव कते मृत रे गुनि सारङ पानि ॥४॥
परिकर बान्हि मुरलि कर रे चढ़ि कदमक गाछ।
सब सकदम ओ ठोकल रे क्रोधेँ भुज काछ ॥५॥
पुनि कुदि कालिन्दी महँ रे नागहुँ दऽ नाथ।
रमणक दीप पठाओल रे कुल कुलधर साथ ॥६॥
से अशरण कऽ लऽ गेल रे मन - मानिक मोर।
सुनि दोसर शरबिध सम रे गाबय लऽ नोर ॥७॥

[३]

दाघ निदाघक भीषण रे कपबय संसार।
भूजय सृष्टि तमोजय रे रहि नभ - संसार ॥१॥
खग अकुलाय कुलायहिं रे मुननहिं निज आँखि।
नीरव नीरनयन, नहि रे सगबगबय पाँखि ॥२॥
पछबा आगिक कण सम रे उड़ि आबय धूलि।
नाशक छन जनु नाचय रे विरड़ो बनि खूलि ॥३॥
जल जलचर केँ उसिनय रे बनि कऽ इनहोर।
झुलसि झरय सुम फल दल रे जनु वृष्टि अङोर ॥४॥
बूझि पथिक प्रलयक थिक रे आगमनक काल।
झाँखि तरुक तर बैसल रे झरकैत बेहाल ॥५॥
शिशु-समुदायक सङ्गहि रे घर घर सब लोक।
बन्द केवार फटक, नहिं रे ककरउ क्यो टोक ॥६॥

जोह बबैत वृक्षतर रे पशु नयन नोरैल।
किछु छन बन्धु सहित पहु रे बसि कुञ्ज बितौल ॥७॥
तै' खन सुनि आक्रन्दन रे बचबह गोविन्द।
दौड़ल हरि सब सङ्गहिं रे बुझि विपति असन्द ॥८॥

[४]

होइतहिं कुञ्जक बाहर रे दक्षिण-दिशि श्याम।
देखल धूमाकुल नभ रे जनु कुलगिरि श्याम ॥१॥
किछु बढ़ि देखि विमन भेल रे हुतवह धधकैत।
जकर जटिल-ज्वाला बढ़ि रे अछि प्रलय करैत ॥२॥
गुरु-गिरि-तुल्य तरुक तति रे ठाढ़े जरि खाक।
दगध-वेणु-गीरह फटि रे, करु शब्द फटाक ॥३॥
जीव जन्तु जरि देलक रे दुर्गन्धि पसारि।
अध जरुआ कत खग मृग रे लखि नयन सवारि ॥४॥
पसरि पसरि दावानल रे रहले वन डाहि।
शीर्ण-शैल भैरव-रव रे कहवै' अछि त्राहि ॥५॥
तै' बिच बाल-सखा किछु रे कह कान्ह ! बचाउ।
गाय कतेक हुँकरि कह रे मोहन ! झट आउ ॥६॥
सुनि सस्मित मितभाषी रे योगक बल आनि।
पीबि लेल दावानल रे पीताम्बर फानि ॥७॥
धेनु सहित बालक सब रे पुनि पाओल प्राण।
अहिना नाथ कते वेर रे कैने छथि त्राण ॥८॥
आब तकर दरसन विनु रे जीवन बेकार।
ई सुनि गाबय तेसर रे लय नोरक धार ॥९॥

[५]

एक दिन शक्र-समर्चा। केर समारोहक सुनि चर्चा ॥१॥
इन्द्र-मान - विध्वंसे। हित तुलि अतुलित ब्रज-अवतंसे ॥२॥

पूछल अछल समाने। नन्दादिक कें नमि भगवाने ॥३॥
कोन समुत्सव भारी। सब जन करी जकर तैआरी ॥४॥
सुनि नन्दन केर बाते। कहल नन्द रोमाञ्चित गाते ॥५॥
कृषि – गोसेवा-मेवा। सँ जिवि पूजी सुरपति देवा ॥६॥
जले दुनुक आधारे। मालिक तकर सुरेश थिका रे ॥७॥
तें मघवा–मख–पर्वें। हो व्रजमे प्रतिवर्ष सगर्वें ॥८॥
तकरे थिक तैआरी। सुनि सस्मित बजलाह मुरारी ॥९॥

[६]

प्रकृति करैं सब काजे। जलद इन्द्र सुनितहुँ हो लाजे ॥१॥
कर्मक फल जग चाखै। वेद पुराण शास्त्र सब भाखै ॥२॥
धूमादिक मिलि मेघे। शक्र चर्च जनु व्यर्थक घेघे ॥३॥
धूआँ यजनक जाते। ई तँ थीक वास्तविक बाते ॥४॥
तें गोवर्धन पूजी। होम करा हुनके बुझि पूजी ॥५॥
जैं तनिके चढ़ि कोरा। चरि तृण हृष्ट पुष्ट पशु मोरा ॥६॥
तैं सँ बड़ि के देवा। जे फल दिऐ तकर करु सेवा ॥७॥
मेवा मधु पकवाने। दूध दही घृत मधुर मखाने ॥८॥
दऽ नवेद गिरि–अर्चा। कऽ द्विज गायक करू समर्चा ॥९॥
खोआ विप्र दऽ दाने। गिरिक प्रदक्षिण कऽ अम्लाने ॥१०॥
पूर सकल मनकामे। सूनि चकिन सब मत अभिरामे ॥११॥
हरि तजि पुजल गिरीशे। से सुनि व्रज पर कुपित शचीशे ॥१२॥
साजि एला घन-सेना। सुन, मुहँ देखल जेना बिनु एना ॥१३॥

[७]

सजल जलद नभ घहरय झहरय मूसल धार।
मानस भीत न ठहरय, लहरय भरि भरि धार॥
झटकि झट झट झटक झोरय, चमकि चपला, चञ्चला,
चकित कऽ चौंकाय मूनय, नयन लऽ सकला कला।

ठनकि ठनका खसय, रभसय प्रकृति प्रलयक रूप धऽ,
पृथुल-पाथर पात, तनु चल-पत्र-पात सरूप लऽ ॥१॥
आब न बाँचत गोकुल, करह गोविन्द गोहारि।
सुनितहिं गोपक क्रन्दन, नगपति नाथ उखारि॥
सात दिनधरि राति दिन छत्ता जकाँ गिरि हाथ मे,
राखि गोकुल-गोप राखल, शक्ति से श्री नाथ मे।
बूझि माथक मोल सुरपति हरिक पद पर माथ धऽ।
अपन लोक गेलाह, मर्दितमान निज-गण साथ लऽ ॥२॥
से सुधि मोर लिऐ नहि, मोर-मुकुटधर श्याम।
सब दुख टारि दुसह दुख, दैछ स्वयं अविराम॥
कतउ रहि बाधा-रहित ओ कुमर चारु युग जिवौ,
गोप गोपी कर्म-गुदड़ी अपन गोकुल मे सिवौ।
आबि एको बेर किन्तु मुकुन्द जुड़बौ प्राण कें
से श्रवण कऽ अपर सुमिरय श्याम तकइत त्राण कें ॥३॥

[८]

मोहन राखल मोह न लेश।
कानि कलपि कत सहब कलेस ॥१॥
मुररिपु-मुरलिक-धुनि जै' ठाम।
विषम-विरह-जर-धुनि तै' ठाम ॥२॥
जकर दरस-रस-सिञ्चित प्राण
देखबय से न विमुख मुख-चान ॥३॥
जकर अभय कर भय कर दूर।
निरदय दय दुख सैह निठूर ॥४॥
व्रज-कृत की पातक, नहि जानि।
नित नव नव उत्पादक खानि ॥५॥

हरि छिनि क्रूर गेले अक्रूर।
जकर वेदन वश छी सब चूर ॥६॥
चर बनि पुनि विचरय क्यो आवि।
भावि सकी नहि, की अछि भावि ॥७॥
वा पहु नहि' तेँ पहुँचओ काल।
डर मुसरक कि उखरि दय भाल ? ॥८॥
जैं चुप ओ कनइत कहि भेल।
उद्धव विकल प्रगट भय गेल ॥९॥

[९]

चकित सबहिं देखिते भय गेले।
आगन्तुक कैर नयन नोरेले ॥१॥
परिचय पाबि जानि हरिमीते।
पद पड़ि पूछल कुशल विनीते ॥२॥
पुनि कह, शङ्कित चित हम गोपे।
कहलहुँ से दुख पड़ि धी लोपे ॥३॥
माथुर एक छिनल चित चोरे।
दूधक जरल पिबत्त फुकि घोरे ॥४॥
करब छमा तेँ बुझि अज्ञाने।
दुखिया गप पर देय न ध्याने ॥५॥
सुनि हरिबन्धुहि लाग बुकौरे।
नयनक नद सँ नोरक दौड़े ॥६॥
धीरज धय पुनि धीर बुझावै
व्रज रज लय निज माथ लगावैं ॥७॥

[१०]

निकट परिस्थिति मे छथि रे हरि गोकुल चाने।
नृप – नीतिक सें ओमहर रे सोमहराय न प्राणे ॥१॥

सतत एतइ सतचित चित रे सत करिअ बखाने।
किन्तु जगत-पालन-प्रण रे करबय किछु आने ॥२॥
देत तदपि दरसन पहु रे, हिय ककर न जाने।
रहि निरीह भावक टा रे भूखल भगवाने ॥३॥
धन अपने सब, जे बुझि रे अपने खग-याने।
अरपिय कऽ सर्वस्वे रे कत करु गुणगाने ॥४॥
सुनि गोपाल कहल क्यो रे हरि सुमिरि भमाने।
पहु-प्रिय जानि कही किछु रे नहि मानब आने ॥५॥

[११]

कहुँ रहि कुशल, कुशल हरि रे पालथु संसारे।
किन्तु हमहुँ ताही महँ रे से करथु विचारे ॥१॥
पद पर पड़ि कहि रहलहुँ रे एको बेर ऊधो !
आनन आबि देखावथु रे बुझि अपन अबूधो ॥२॥
की कहु, थिकहुँ पुरुष हम रे पाथर अछि छाती।
जिउति कोना कोमल हिय रे चातकि विनु स्वाती ॥३॥
विरह-वेथित थित-वित्त बिनु रे जे कतेक हजारे।
बनलि बताहि विआकुलि रे व्रत राखि कुमारे ॥४॥
चरित देखैव तकर हम रे करइत हरि-लीला।
सतत समय वितबय जे रे तरुणी गुणशीला ॥५॥
भेल अबेर एखन चलु रे ई भोजन बेला।
काल्हि देखब गोपिक प्रति रे जे भाग्यक खेला ॥६॥
सुनल यथार्थ यथा दुख रे मम अप्रकट रूपे।
सुनब तथा दारुण दुख रे छिपि गीत अनूपे ॥७॥
बेकत होइत विभु-वन्धुक रे भौहरि उठि जैते।
मुक्त दुआरि दुखक लखि रे प्रिय, सत भऽ जैते ॥८॥
कुञ्ज कुञ्ज महँ दिन भरि रे सब तरि ब्रजबाला।

'बनलि बताहि विश्राकुलि रे जपइछ हरिमाला ॥९॥
तें न पुरुष क्यो आबय रे लखि वेदन अपारे।
के विदीर्ण करते हिय रे जै' सँ न उबारे ॥१०॥
देखि सूनि बुझि सब छिपि रे पुनि कहब समादे।
बोधब भानु दुलारिहुँ रे दय दय आह्लादे ॥११॥

[१२]

अपर दिवस हरि-भक्ति-विवश किछु गोपकुमारक संगें।
पुन पुनमति पिकवचनी गोपिक सुधि कऽ परम उमङ्गें ॥१॥
भोरे भक्ति-विभोरे घुमइत इत उत गोपित-रूपे।
उद्धव कोनो कुञ्ज सँ कारुण स्वर संगीत अनूपे ॥२॥
लगला सुनय जाय लग, लागल छल जत तरुणिक मेला।
खन हिचुकब खन श्याम ! श्याम ! कहि चुकब, दुखद से बेला ॥३॥
औरो छपकि निसास रोकि बनि शासल सम विभु-मीते।
पाथल कान ताहि थल, देखइत गोपिक सत्य पिरीते ॥४॥

[१३]

अदय दुसह दुख दय गेल रे कपटी नन्द लाले।
रीति पिरीतिक से भेल रे सदिखन कर भाले ॥१॥
चानन चान न भावय रे से विरहक ज्वाले।
फूल शूल सम लागय रे पिक स्वर जनु भाले ॥२॥
धिक् अवधिक दिन पर हम रे कैलहुँ बिसवासे।
आधिक जनक बनल ओ रे कऽ मधुपुर वासे ॥३॥
बारि गेल वारिज-दृग् रे वय वारि न मानै।
आब वारि-तिल पायब रे मथि मन्मथ जानै ॥४॥
गवइत कानि कलपि कत रे झट चुप सब भेले।
झटकलि गत सुधि सखि क्यो रे आगत भऽ गेले ॥५॥
आ' कपइत ओ बाजलि रे चल चल श्री कुञ्जे।
जिउति न हरि बिनु राधा रे जे गुण-गण-पुञ्जे ॥६॥

[१४]

वेकलि बनलि व्रजवनिता रे सुनिते सखिबात ।
हरि ! हरि ! कहि झौहरि कय रे सब कम्पित गात ॥१॥
दौड़लि अपगत-सुधि-बुधि रे पथ-विपथ न जानि ।
झट बद, झङ्कृत-भूषण रे जनु कहइछ कानि ॥म॥
फूजल कच, कचकच तन रे खसने कत बेरि ।
क्षत-विक्षत पद काँटें रे क्यो सकय न हेरि ॥३॥
वसन श्वसन उधिआइत रे चकमक तन गोर ।
विरह-वैजयन्ती जनु रे फहराय अथोड़ ॥४॥
नोर-भसल-कज्जल-कृत रे कारी भेल गाल ।
बाट बनल सुम लतिका रे टुटि कबरिक माल ॥५॥
हार वलय नूपुर च्युत रे क्यो सकय न जानि ।
बुझय न, सङ्गहिँ धावित रे उद्धव गुण-खानि ॥६॥
ओकुञ्जक लग जैतहिँ रे सब भेलि अवाक ।
विरह-वेदन-बाधा-वश रे से थिति राधाक ॥७॥

[१५]

जैतहिँ सब घबड़ायल, जैँ सुनि पाओल रे ।
तार स्वरेँ दोहराओल, रुदन-भिजाओल रे ॥१॥
पुनि पुनि चानन-पङ्कहिँ, पङ्कज-दल-चय- रे ।
दय दय बदलह सेज, छनहिँ जे झरकय रे ॥२॥
क्यो कह, नहुँ नहुँ होँ कह, तारक बीअनि रे ।
वा घनसार तुषार, सजल सिचि दीअनि रे ॥३॥
क्यो कह, कातर प्राण, कातरक शिर दय रे ।
नीर, नीरजाक्षीक दिअनु शिर थिर भय रे ॥४॥
क्यो कह, करह न देरि सबहिँ मिलि आबह रे ।
सनक 'मधुप' हरि आयल ललि-लग गाबह रे ॥५॥

[१६]

मोर-मुकुट मुरली-मुखरित-मुख मनमोहन वनमाली।
मदिर-मञ्जु-मुसुकान कान मणि-कुण्डल गुण-गणशाली॥
गोवर्द्धन-गिरिधारी।
नन्दक नन्दन धन, विहरै जे वन वन, ऐल से रासबिहारी॥१॥
इन्दीवर-रुचि, माखनमे रुचि, रुचिर त्रिभङ्गी रूपे।
लटकल लट कल गण्डस्थल अलि-कलित सरोज अनूपे॥२॥
जनिक दरश विनु, दिन न रैनि निन, धिन सम जीवन लागै।
से पहु आगत, करु मिलि स्वागत, विगत-विरह दुख भागै॥३॥

[१७]

सखि-सङ्गीत स्वरैँ सुनितहिँ समुपागत श्रीपति राधा।
चट चखु खोलि चकित चित देखथि दशोदिशा निर्बाधा॥
कहइत कतय कन्हैआ।
कमल-कान्त-कमनीय-कलेवर देखा देखा गे दैआ॥१॥
धरनि करैँ धय, मुख उन्मुख कय, उठि खसि पुनि उठि बाला।
कहाँ प्राण-पति कहि निपतित सति श्वासैँ रटइत लाला॥२॥
क्रन्दित-सखिजन, धैल शयन तन करइत लख उपचारे।
उद्धव लखि गति विस्मृत-गति-मति प्रगट बहा जलधारे॥३॥

[१८]

देखिते कन्हाइ सरूपे, भूषा आ' वेष अनूपे,
ऊधोकेँ गोपी समुदाय झट पूछै लगली॥१॥
के तोँ कहाँसँ भैआ! देखवामे ठीक कन्हैआ।
ऐला बनि दीना केर सहाय झट पूछै लगली॥२॥
गोकुल बुझि विपतिक नदिआ, ऐलह की पहुक समदिआ।
देखबऽ किछु जीवन केर उपाय सब पूछै लगली॥३॥
सुनि से भऽ भाव-विभोरे, सरसिज जनु शिशिरक भोरे—।
नयन नोरैले, यदपि कहल नहि जाय सब पूछै लगली॥४॥
कहुना तैयो धऽ धीरे, कहलनि ओ धीरे धीरे।
जोड़ि पाणि हरि सुमिरि रोमाञ्चित काय सब पूछै लगली॥५॥

[१९]

उद्धव यदुनाथक दासे, हुनके आज्ञासँ खासे,
आबि सनाथ भेलहुँ हम गोकुल गाम लऽ पहुक समादे ॥१॥
धन धन व्रजभूमिक धूली, जै' ठाँ खल-दल-निर्मूली।
क्रीड़ा कैलनि, देखल सैह हम धाम लऽ पहुक समादे ॥२॥
गोपी-जन सन के अन्या, जनिकासँ जगती धन्या।
पूत भेलहुँ कऽ दर्शन तनिक ललाम लऽ पहुक समादे ॥३॥
धन्या वृषभानुक कन्या, त्रिभुवनमे हरिक अनन्या।
कऽ रहलहुँ हम तनिके कोटि प्रणाम लऽ पहुक समादे ॥४॥

[२०]

राधा सुनि हरि बान्धव उद्धव आयल रे।
सकुशल कुशल समाद-गोविन्दक लायल रे ॥१॥
बैसलि पुलकितगात नयन झर झरझर रे।
बोल न फुट, गर बाझल, कँपइत थरथर रे ॥२॥
धय धैरज हुनि पद-रज आँसि सगर तन रे।
ऊ कहुना पुनि धव कहि पुनि गुम किछु छन रे ॥३॥
आखर कृपणक देय सदृश हो बाहर रे।
हिय दीने दानी सम बाजक हित कर रे ॥४॥
सम्हरि, कुशल प्रिय केर कोनहुना पूछल रे।
लागलि तखन कहय दुख दारुण निश्छल रे ॥५॥

—:꙳:—

सो ड़ ह म स र्ग

[१]

ऊधो ! सालि हिश्रा, जहिश्रासँ मोहन मधुपुर गेल हे।
तहिश्रासँ तहिश्रा कऽ सब दुख, जनु विधि ब्रजकेँ देल हे॥

[२]

बूढ़ महर हरदम कनैत सब तजि, लेने खटबासे,
पथ तकैत पथरैल नयन.. केवल छथि लैत निशासे।
महरि सदच्छन भोहरि करइत पोटि फुलावथि छाती,
पाथर बनि थर-थर कपैत छोड़बी प्रति दिन हम दाँती॥
पद-धुनि सुनि, दऽ दृष्टि, माथ धुनि बहबथि नोर अलेल हे॥

[३]

बिनु अम्भोज नयन-घनश्यामक भोजन केर की बाते,
बारि-वारि धरि देथि कते दिन अवलम्बन वश वाते।
पावनि कोन ? न जैंमे मूर्च्छित कोन सान्हिमे माता,
निन्द हुनक नयनक निन्दक बनि ताकय आश्रय-दाता॥
राङ समान आङ गलि आङ्गन टा मे रहबा लेल हे॥

[४]

पहुक सङ्ग जे बालवर्ग-तुच्छे अपवगहुँ जानै,
गायक सेवन-रत हरि-सद्गुण-गाथक बनि नित फानै।
माय बाप रहितहुँ भमाय से दूसर केर समाने,
गोचरवाहक चरचा जै' ठाँ पाथि देअय सब काने॥
निअहुँमे नहुँ-नहुँ नहि चिक्करि कहै कृष्णक कृत खेल हे॥

[५]

एना चलय, मचलय, दऽ दऽ लय, एना कान्ह कहुँ गावै,
माख न किछु कहिऐक तकर माखन छिनि खाय, खुआवै।
वंशी बजा गोपवंशी विच नाचि सरूप त्रिभङ्गी,
ताल दैत कत ताल लगावै रचइत बहुतो भङ्गी॥
ताहि सदय सङ्गी बिनु, जीवन-सङ्गीते गत भेल हे॥

[६]

क्रन्दन करइत कान्ह कहाँ कहि शिशुसब मन उचटावै,
कोनो पथिक कें मधुपुरीक थिक बूझि दलक दल आवै।
सरल-स्वभाव भाव सँ पूछै कहिआ औत कन्हैआ,
ओकर विना तृण-ग्रहण करै नहि गोकुल गामक गैआ॥
मन मसोसि रहि जाइ रहितधृति यात्री बुझइ बलेल हे॥

[७]

अहिना बनलि बताहि-ताहि दिनसँ गोपी केर वृन्द हे।
गाढ़ि वारि-वय, बिना वारि-मीने सम बेथित अमन्द हे॥

[८]

विकट एहि दुर्दिनमे दिन भरि लोचन भरि जल लेने,
हरि-सेवित - हरिताभ - कुञ्जमे श्याम - श्याम रट केने।
अलख जगाबय, गाबय विभुगुण फूजल-लट लटकौने,
सनकलि जकाँ वसन कलिता रहि सुधि-बुधि अपन हेरौने॥
आधि-समाधि-लीन खन चौंकय कहि आनन्दक कन्द हे॥

[९]

पूत - नाक - वासिनी बनलि तैं' पूतनाक वध-लीला,
कलापूर्ण क्यो करै कलानिधि-मुखी सकल गुण शीला।
देखा अघासुर-हनन कतउ क्यो नहि अघाय व्रजवाला,
लखि वक-मृत्यु, सशक्र मुख-मुखरित कहुँ कहि जय नन्दलाला ॥
क्यो कहुँ धन धन, पाबि-ऊखरिक बन्धन कें सानन्द हे ॥

[१०]

किन्तु राति अबितहिं-अराति सम, घर घरमे सब कन्या,
असह्-विरह सँ वेथित एक कँर गति बुझैत नहि अन्या।
निपतित मूर्छित उपचारित कत, सजग होइत रटि श्यामे,
मार-मथित-मानसो मारकत-छवि टा हेतु सकामे ॥
प्रेम-निशा कें निशा-निशाचरि चरि कऽ सकय न मन्द हे ॥

[११]

जानि न की भवितव्य-सकल कर्त्तव्य तेजि व्रजवासी,
मोह न जकरा तैं' मोहन लै गाबय सतत उदासी।
मनबय मनसँ मृत्यु. मनोमोहन बिनु उठि उठि भोरे,
पीतपटी कपटी ओ विहरय एतय दुखक नहि ओरे
जानय छलिआ, जान देअय सब, पुनि बैसल स्वच्छन्द हे ॥

[१२]

खगकुल खगल-कुटुम्बी सम अकुलाय कुलायक सेवी,
साबक तक तकबो न करइ अहरा दिशि, बुझ वन देवी।
पोसल शुक अंशुक धऽ पूछइ गेल कहाँ व्रजचन्द हे ॥

[१३]

श्याम-जलद देखितौहँ श्याम बिनु शिखि सिखि लेल न नाची,
मञ्जु-अलापिक विना आइ पिक-कूकें टा नहि बाँची।
भेल भ्रमर भ्रम-रहित न हो-मम उरसिज भ्रमणक सेवी
नोरें अगनित बढ़ि नित-धारामे नौका टा खेवी ॥
वृन्दारक - सेवित - वृन्दामे केवल करुणा - कन्द हे ॥

[१४]

कहि हरि नीक नयन हरिनीक-नयन सँ तोरे राधा,
माप करथि जे त्रिभुवन-मापक दैत खेलमे बाधा।
देखथु से युग-नयन आबि युग उन्नयनक अधिकारी,
धसल देखि कय चौंकय मृग नहि विजयी विपिन विहारी।
रूपक कच मम, तदपि न आबय-रूपक प्रिय नन्दनन्द हे॥

[१५]

प्रकृति समान-दृष्टि सँ मानय सबकेँ, केशव - शिक्षा,
मानव कोना, विकल-मानय हित तकरउ किछु न दिक्षा।
ऋतु-विशेष-फल-भोगी जग मम हेतु बनै ओ भोगी,
तेँ प्राकृतिक नवाकृति देखिते बची कोनो जा' दोगी॥
कारण तकर, अकारण रहितहुँ मालिक ओकर मुकुन्द हे॥

[१६]

नव नव दल सँ लदल लता तरु तदपि न बदलल भाग हे।
पतन पुरातन पातक, तैयो चलय न पातक दाग हे॥
कुसुमित डारि, डारि दुखमे आबहुँ न ऐल बनमाली,
मधु-ऋतु मधुक कणो नहि सम्भव खाली भाग्यक माली।
मजरल उपवनमे रसाल—मम जरल रसाल जुआनी,
कुहुकय पिक, कुहुकय जीवनकेँ विसरल मोहन मानी॥
सब कोरक रसमय—यशुमति-कोरक नीरस-अनुराग हे॥

[१७]

धीर-समीरक सुखद परसबुझि बुलय मुदित संयोगी,
वहौ न ई कबुलय ज्वाला लहि हमरा सनक वियोगी।
कलिका लग अलि-कामुक-गुञ्जन जन-मन-रञ्जनकारी,
सिहबय बूझि सिहरि हम आँचर दय मुख दी सिसकारी॥
ओ कबरी कुबरीक गूँथि कय मना रहल छथि फाग हे॥

[१८]

की फागुन गुन तकरा हित हित छैक जकर परदेशी,
की कुरंग नयनीक रंग जौं छै' न अपन आवेसी।
रंग राग अनुराग कहाँ जौं शान्त न हृदय-पिपासा,
जीवन-रणमे मरण कहाँ या' धरि कनिच्चो अछि आशा॥
जनक हेतु सन्दिग्ध-जनक केर कहु ककरा उपराग हे॥

[१९]

चानक होइत अचानक उदय लगै अछि आङ पसाही,
चानन-पङ्क पङ्कजहुँ लेपी चान न तेजय धाही।
अङ्ग दैत सरसिज-शय्या पर हो छाउर उरज्वालेँ,
हिचुकि खनहिं चुकि जाइ व्याल बुझि भाल त्रस्त ऐ' भालेँ॥
तदपि एहि कठजीवक जीवक रत्तक आशा-त्याग हे॥

[२०]

खन विमना अनमना हेतु मन-मोहन-मूरति आँकी,
अपना अपनामे सटबक हित दैत दहो दिशि झाँकी।
बूझि वियोग-विदग्धा बहुतो दिनक मनोरथ बाँकी,
सेज बिछा हरि लै छाहरिमे आव लेब रस छाँकी॥
श्याम कहाँ ? मेनाक शब्द ता' सुनी बेथित, जैं जाग हे॥

[२१]

अवधि दैत खन दैत जकाँ वधि जाइत जौं निरमोही,
वेदन निवेदन कऽ नहि कहितहुँ आइ सिनेहक द्रोही।
हो उन्माद समादक नामहुँ, जकर समदिआ आबै,
आह ! सैह फुसिआह, कोना तनिका दूतक गप भावै॥
दूधक जरल घोर फुकि पीबै भन लोकोक्ति-विभाग हे॥

[२२]

गनि गनि तारा नयनक तारा राति राति भरि जागै,
पलक मुक्त पट, सकपट हरि नहि हिय-मन्दिर सँ भागै।
विरहानलक लपट सँ कनिन्वो प्राणक डर नहि लागै,
वन्द प्राणपति पर न आँच लागौ से चिन्ता दागै॥
तें शीतल हीतल राखक हित बनबी नयन तड़ाग हे॥

[२३]

तनुक तनुक रुचि अतनुक ज्वाला जारि बनौलक झामे,
धिक्, व्याधिक न निदान बुझै क्यो-वैद कोनो ऐ' गामे।
रङ्ग विरङ्गक वस्तु-जातकँ देखि रहल छी श्यामे,
अद्वैतक सीमा तक ऐनहुँ लोक करै बदनामे॥
की करु, करुणाहीन-दैव-डाहल अभिलाषा-बागहे॥

[२४]

विरह-कलेश तेहन, नहि भावि-विनोदक लेशक आशा,
मधुसूदन मधुपुर तजि औत-प्रतीति न रत्ती माशा।
मरण शरण नहि दऽ सकते यद्यपि ली दीर्घश्वासा,
कृश तादृश, यमराज ताकि व्रज भरि,गेलाह निज बासा॥
चाह, अन्त अन्तक करैत दऽ हरि-पद पद्म-पराग हे॥

[२५]

लेपि भसम नभ-सम ब्रह्मक, ध्यानहुँमे चित्तलगाबी,
योगी जकाँ वियोगी होइतहुँ निशि-दिन अलख जगाबी,
चहुँदिशि धुनी धुनी तैयोशिर, हेतु तकर नहि जानी,
तदपि न गोचर गोचरबाहक पद-पङ्कीरुह-राग हे॥

[२६]

आश नमारि मारि नित आसन मारि करी सुर-अर्चा,
कऽ अनल्प-सङ्कल्प न हो सङ्कल्प-विकल्पक चर्चा।
अनुष्ठान हुनके हित श्रद्धा सहित कराबी दीना।
दिनुके हीना जकाँ शान्ति-सुखसँ भऽ तदपि विहीना॥
करी विलाप करीरक तर, ओ अकरी रञ्जित-राग हे॥

[२७]

गणक-गणक-गणनासँ उचरल-'पहु औता' फुसि भेले।
देथु दरस दामोदर द्रुत तेँ दान देबो दुसि देले।
जार जकाँ विस वास हुनक विसवास तदपि दृढ़ हो रे,
भरि भरि कनक कटोरी खीर लगा धुनि टोरी, खो रे॥
पुलकाञ्चित-मोदित चित कहि दी जैँ कुचरै कहुँ काग हे॥

[२८]

एहि प्रकार विकार हीन-विधु-विषम-विरहमे राधा,
माधव-वान्धव-उद्धव सँ कहि कऽ लऽ प्रेम अगाधा।
कुहरि कुहरि हरि हरि रटि कण्ठक बझने छन चुप दीना,
बाजि उठलि पुन पद पर पहु सम अलि लखि खेदेँ खीना॥
अधर-वृत्तिसँ ओकर, अधर पट पर लऽ विद्रुम-राग हे॥

[२९]

जनु सम्बोधन करइत अलि केँ उद्बोधन हित ऐल।
ज्ञान-यशोधन उद्धव केँ कहइछ लऽ हृदय दुखैल॥



स त्र ह म स र्ग

[१]

चुप रह लोलुप मधुप ! न मधु-पक-स्वरमे कर गुञ्जार रे ।
चाटुकार-साकार-जार, नहि संस्कृति-सदन उजार रे ॥

[२]

कि तव कितव-बान्धव ! कुचालि-अछि सहबा योग कनेको,
मौलि रहलि दऽ मौलि हाथ जे कलिका छलै अनेको ।
तोरे सरस भास सँ भासलि रागे सुनि अनुरागे—
मे कौमार्य, अनार्य-वृत्ति कऽ गमा लगाओल रागे ॥
विपति ताहि से, ओ पतिता-पतिता बनि लेअय अभार रे ॥

[३]

रसना - रसमे बोरि, पंखुरी-रसनामे धुनि देने,
धुनि दल-बसन वश न रखने चित मान-कमान नुकौने ।
रागहिं राग जगाय, गाय-गायक ! सुधि बुधि भुतिऔने,
मधुक अभाव होइत दोसर मधुपुर दिशि डेग बढ़ौने ।
गुन गवैत आनक पुनि गुनगुन लुटह सतीत्व बजार रे ॥

[४]

निघटल-धूलि, धूलि फाँकै जे सदयक नीर-सनाथे,
नीरस नाथे कृत आकृति लऽ पथ पर पड़लि अनाथे।
दुर्दशाक नाथे सँ नाथलि मित्रो केर प्रहारे
सहइत, श्रद्धाञ्जलि टा जकरा दूबि - दत्त - नीहारे॥
तकर मरण-संस्मरण करह की बसि स्वार्थक संसार रे॥

[५]

वत्सलता ओ कोनो लता वा तरुक प्राप्त छलि कैने,
दुष्ट-तरुण! तरुनाइक सङ्गहिं से तोहीं लुटि लेलेँ।
खोल मूहँ, ओहने मखोल केर खोल पहिरि रुचि-कारी,
मचलि चलित-चित चलि कुमार्ग पर बनह गुनिक अवतारी॥
बुझि उदार जे दार, तकर हित-दारुण की भल चार रे॥

[६]

ऊषा खोलि अपन मञ्जूषा उबटन लगबइ भोरे,
लग बइसलि पिक-वनिता उठबइ गबइत भाव-विभोरे।
मचकि मचकि शाखा मचकिक ऊपर झूलइ सुकुमारी,
देल अरुण-वर्णक अरुण सँ चमकइ चकमक सारी॥
संरल-स्वभाव तकर तोँ — दूषित-भाव! केलेँ अपकार रे॥

[७]

परस न जकरा वासनाक,—कऽ बास नाक सुरवृन्दो,
माथ लेथि, मा थम्हि मुदिता, जैं ठाँ रखने हो मन्दो।
सौरभ-सुयश सौरमण्डल धरि-रूपक रूपक द्रष्टा,
कऽ निर्मान मान दऽ जकरा स्वयं सदच्छन्न स्रष्टा॥
तकर एना साक्षात करइ तोँ हम न बिगाड़ि लिलार रे॥

[८]

वा उचिते ई काज तोर, रे काजर सँ बढ़ि कारी,
श्यामल-वर्ण जकर, कीं वर्णन करु, ओ ध्रुव अपकारी ।
कारी कालकूट किछु करिते ग्रास, करै निष्प्राणे,
कारी कने कलानिधिमे जे लखि विरहिणि म्रियमाणे
कारी कम्बल, शत-साबुन मलनहुँ न स्वच्छ आकार रे ॥

[९]

कारी कामिनि कुन्तल, कामिक हेतु कुन्त सम लागै,
कारी-विन्दु कने टा-इन्दुमुखिक, ककरो हिय दागै ॥
कारी होइत उरोज वदन यौवन-वन हेतु कुठारे,
कारी कण्ठ कृपालु-शङ्करो करथि सृष्टि-संहारे ॥
कलुषित कोनो कर्म ककरो सँ करबय कारी मार रे ॥

[१०]

कारी रूप जकर, हिय बूझी भग्न पक सहकारी,
मधुर वात होइतहुँ छलबामे निश्चय विस्मयकारी ।
कण्ठक कान्त-काकली कनिञो सुना कोकिला कारी
यद्यपि जन-मन-रञ्जन करइछ, किन्तु दुष्ट ओ भारी ॥
वायस-पोषित असित वरण बढ़ि भागै अपना द्वार रे ॥

[११]

कारी दशरथ-तनय, विनय-नय-नयन-लसित मृदुभाषी,
पुरुषोत्तम अज्ञानो तम कऽ खतम दर्शनोपासी ।
सती शिरोमणि अग्नि परीक्षित-सीता केर कऽ त्यागे,
प्रजा हेतु कैलहुँ से कहि कऽ बान्हल साठा पागे ॥
कारी काक परसि, अपवित्रे करै वस्तु साकार रे ॥

[१२]

कारी अमा चोर केर जननी जन-नीतिक कऽ भङ्गे,
सङ्गे रवि शशि राखि अन्हारक दै' अछि राज्य अभङ्गे।
केहनो सौम्य रहौ मुख, कारी लेपल सम्मुख आबै,
बिना कहल, सकलङ्क जानि सब दूरे शीघ्र भगावै॥
कारी काल अकाल रहौ वा काल करै गतसार रे॥

[१३]

अबुध हमहुँ बुझि सुबुध हाय रे! कारी कान्हक सङ्गे,
कऽ पिरीति जे कर्म कुटै' छी देखय विश्व अभङ्गे।
तनिके दूत तहूँ तँ कारी हैवह भ्रमर! विकारी,
चोर चोर मसिऔत विदित अछि, मानु कोना उपकारी॥
चरण पकड़ि ई छलक आचरण छोड़, नछोड़ब आर रे॥

[१४]

कर न खुशामद हमर समद! छलिआक चार! हम जानी
माथुर-मानिनि कें मनबक हित लगा प्रपञ्चक फानी।
कुच-विगलित माला-केसरि सँ असक्कत-कृत अवतंसे,
ओकरे सभक मान-खण्डन कर हरि-हित सुना प्रशंसे॥
व्रण पर लवण देब नहि समुचित चञ्चलचित कुविचार रे॥

[१५]

मधुर-मनोमोहक-मुरली केर मदिरैं मत्त बना कऽ
पिया, पिया बनि अधर सुधा भागल लऽ भाग, कना कऽ।
कोना ओकर पद-पद्म परागक सेवनमे रत पद्मा,
किंवा तें तनिके सङ्गति सँ बनली अगणित सद्मा॥
पति-प्रभाव पत्नी पर-प्रतिबिम्बित हो नीति पुकार रे॥

[१६]

दीनानाथ-उपेक्षित, तदपि अपेक्षित, दीनाऽनाथे,—
विरहिणि-व्रजबाला लग पहुँचुन सुना न करह सनाथे।
आदति केँ दतिऔने ओकरे सफल मनोरथ गाने,
करह जाय, जे कृत-कृत हरिकृत पाबि नखक्षत-दाने॥
भूखल लग भोजक सुख वरनब खलता केर प्रचार रे॥

[१७]

तीनू लोकक काम-कला-कुशला-नहि के अभिरामा,
रामा, रमण रमा रमणक चाहैत हैत गुणधामा।
अष्ट-सिद्धि नव-निधि जनिके पद-पङ्कज पर ओङ्घरैले,
गोपधिआ की मन्दधिआ-हा ! तनिक धिआन लगौले॥
मुदा उदास न दास होअय बुझि भावक प्रिय सरकार रे॥

[१८]

केहेन केहेन ओ बजा विपञ्ची परम प्रपञ्ची नामी,
कार्य अनार्यक युग युगमे कऽ बनला नामी गामी।
अवध-निवासी होइत व्याध सम बधल वानराधीशे,
जे छल निश्छल हृदय जानि- निश्चिन्त, राम जगदीशे॥
पतित वालि, भाउजि-रत-रवि-सुत शिष्ट, धर्मसत्कार रे॥

[१९]

आह ! केहेन फुसिआह-, मदन-मथिता सुपनेखाकेँ ओ,
छथि मम अनुज कुमार मार सम, कहि सत-रेखा केँ ओ
मेटा, ओकर कटबाय नाक श्रुति श्रुति-सम्मानित भऽ कऽ,
नहि कुवृत्ति सँ मनक निवृत्ति-करथि भ्रम जगकेँ दऽ कऽ॥
बिना गुने नहि दोष तदपि ई दोषज्ञक उद्गार रे॥

[२०]

बलिहारी, कऽ सत्त्वगुणक बलि ठकि बलि सँ सर्वस्वे
लऽ, बन्धन दऽ, अपने बनि धन, पलमे कैलनि निःस्वे।
पक्षपात - पातककारी से, कारी छनि इतिहासे,
दानव-पक्ष-पात कऽ सुर केँ अमृत-पिऔल सहासे॥
ताहि कीरतन केर कीरतन सुना न उठबह ब्वार रे॥

[२१]

मधुव्रत! हुनके व्रतमे व्रतती पतिव्रतमे तल्लीना,
साध्वी-समुदायैक शिरोमणि कुवलय कान्ति कुलीना।
वृन्दा केर सतीत्व सैह वृन्दारण्यैक बिहारी,
वृन्दारक-वृन्दक हित कैलनि छलेँ हरण व्यभिचारी॥
तकर दूत जादू-तरु हाँकि न मोह मोहनक यार रे॥

[२२]

हुनक पुरनका कते कहब गप काक नयन क्षतकारी
काकपक्षधर ताड़काक लऽ लेल प्राण धनुधारी।
विदित वधू-वध चरित अनेको डरेँ विबुध गण गावै,
शैशव-समयक पूतनाक वध सुनि के नहि मुँह बावै॥
संबलक प्रायश्चित ककरो प्रायश्चितमे न सुमार रे॥

[२३]

आनक गप आनक न काज आनक दुन्दुभिज सिनेहे,—
मे आकुलि हम व्रज वनिता बनि सुखा रहल छी देहे।
लोक-लाज कुल केर मान कुल सठा बताहि कहाबी,
संस्कृति-सरसिज-हेतुक हिमबनि गामक नाम हसाबी॥
हैत गृही के पाणि गृहीतो केँ तजि देत गमार रे॥

(२४)

आबै हरि न, हरिन वंशक तैं तेजल लेल मृगछाला,
भसम रमाय रमा-रमणक टा जपी नाम केर माला।
मुक्ताहार तेजि कऽ मुक्ताहार सबहिं व्रजवाला,
गिरिक दरीमे गुदरी सीबी, रिझनहि बंशीवाला॥
ओकर चाट से, जैं' उचाट केर चाट लागि सब पार रे॥

[२५]

हरि-प्रिय हेतुक कुम्भ करे चक चक करैत दिन रैने,
लगा तराटक आनो केँ सें करा तराटक नैनें।
तप-पूरक-साधना-लीन षट् चक्र चलाय वियोगे,
दवा दबा व्यालीक मुहोँ रस श्याम सहस दल भोगे॥
करी आधि वर्द्धित समाधिमे तदपि सिद्धि फटकार रे॥

[२६]

हिनके दोष देब की, छथि सब देव आचरण-हीने,
सुर सम्राट मुनिक पत्नीकेँ कैलनि मार्ग-विहीने।
पङ्क कलंकक लागल जनिका से शशि शम्भुक भाले,
ठकि कौमार्य हरण कऽ कुन्तिक पूजित रवि दिक्पाले॥
तदपि अनारी से हम नारी पुरुषक बनी सिकार रे॥

(२७)

अधिक कहब की रहल न किछु हब प्रियसख ! पूजित मोरे,
स्वागत शब्दो कहल न हम सब विरहँ बनलि विभोरे।
पद पड़ि क्षमा याचना करइत हुनक कुशल टा पूछी;
की सत्कार करब दुर्विधि-कृत भावनौक छी छूछी॥
सुधि कऽ सुधि-गोष्ठीमे कहियो कि करथि चर्चे गोपाल रे॥

[२८]

स्मरण करथि कहियो की गोपी गोप-सखाक कन्हैआ,
पोसल माय बाप जे तनिकर वा प्राणकप्रिय गैआ।
वृन्दावन, गोवर्द्धन, यमुना कदम तरक ओ क्रीड़ा,
करनि ध्यान आकृष्ट ? कते कहु-कहितहुँ होइछ व्रीड़ा, ॥
कतउ कुशल सँ रहथु दरस टा देथु प्राण आधार रे ॥

[२९]

जातिक सहज गोआरि सतत शिक्षाक आरि सँ दूरे,
विषम वियोगानलक धाह सँ दगध भेलि अति भूरे।
कते कहल कटु कथा, कान्ह लग बाजब नहि से ज्ञानी।
लगतनि चोट मृदुल हियमे, तेँ हो कचोट मृदुवाणी ॥
की की कहल समाद कहूसे व्रजवनिता शृङ्गार रे ॥

[३०]

सुनि पिक-वचनी-गोपिक उद्धव बात हरिक सन्देशेँ
बोल भरोस दैत गप लगला कहय प्राप्त आदेशेँ।
अहाँ लोकनि धन, कनिकोमे कनिको ई गुण नहि पाबी,
तन्मय रहि चिन्मय मे अपने सब जे ज्योति जगाबी ॥
मुनि मुनि लोचन सुर मुनियोँ नहि जगा सकथि साकार रे।

[३१]

पिता, पुत्र, पति, परिजन, स्वजन, शरीर,सदनहुँक मोहो—
तेजि समाजक लाज न मनमे कौखन करइत ओहो।
आत्मनिष्ठ हरिमे अर्पित भऽ तिरपित सदिखन नेहेँ,
दासी मुक्ति बनौल, उदासी जग सँ राखि सदेहेँ ॥
तुअ दर्शन कऽ तुअल पाप-मम, जैसँ सृष्टि सुधार रे ॥

[३२]

सुनु संवाद रहस्य गोविन्दक कथित सकल व्रजबाला,
जे सुनि सुखी हैब सुमुखी सब, रहितहुँ विरहक ज्वाला।
जे कहलनि भगवान पहिरि भगवा न योगियो जानै,
मनन करैत मन न चंचल मायांचल मुनि न गुदानै
वासनाक धऽ नाक विषय विष नहिएँ करथि अहार रे॥

[३३]

सकल भूत मे पाँचो भूतक जहिना रहइछ वासा.
मन भूतेन्द्रिय प्राण गुणो हमरामे करु विश्वासा।
अपने मे अपने हम सर्जन अपना केर करैं' छी
लालन पालन तथा बिर्सजन हेतुक शक्ति धरैं' छी॥
भिन्न कहाँ क्यो तेँ नहि डाहै तुअ विरहक अंगार रे॥

[३४]

दोसर बात, वियोगे उत्तम संयोगहुँ सँ मानी,
जकर जलन होंइतहुँ अभिन्न हृदयस्थ प्रेय केँ जानी।
सकल-वस्तुमे अपन सिनेहिक मूर्ति सदच्छन देखी
से संयोगी पौत कहाँ जे लखि गत योगिक सेखी॥
आत्मनिष्ठ कऽ आत्मप्रिय केँ हम तँ करी विहार रे॥

[३५]

तेँ एकान्त-भक्ति हमरे कऽ अन्य वस्तु रुचि छोड़ू,
ध्यान हमर निशि दिन करैत माया बन्धन केँ तोड़ू।
शीघ्र हमर दर्शन कऽ हमरेमे भऽ जायब लीना;
मुक्तिक आन उपाय न. बोध उपायन ई अच्छीणा॥
करइत सतत चिरन्तन चिंतन करह द्वैत वन छार रे॥

[३६]

प्रिय समाद सुनि मोदक मादकता वश गोप वधूटी
उद्धव सँ लगलीह कहै पा' सत्य-सिनेहक बूटी।
हमरे सभक भागसँ मारल गेल कंस अततायी,
जीवित ओकर ओतय नहि रहले एको टा अनुयायी॥
पाओल दर्शन ज्ञान जकर दर्शन विनु सकल असार रे॥

[३७]

सविनय पुनि-पुनि कही तदपि एको दिनुका हित स्वामी,
वारिज वदन देखाय जाथु राधा कें अन्तर्यामी।
राज-काजमे बाधा किछु नहि करबनि आधा आङे,
थिकहुँ हमहुँ से गर्व सतत अछि जैँ छूने छथि माङे॥
मुदा नयन अलि नहि मानै विनु देखने कंजक सार रे॥

[३८]

सुनि उद्धव राधायुत सब गोपी कें बोल भरोस—
दैत कतेको मास बिता गछि औता सत्यक कोष।
श्याम हेतुएँ भिन्न-भिन्न व्रजवासिक लऽ उपहार,
उद्धव मथुरा आबि कृष्ण कें अर्पित कैल उदार॥

[३९]

बुझि राधा सान्त्वना, पाबि पुनि हुनका सभक सनेस,
अश्रु विंदु स्नुत होइतहुँ पाओल परमानन्द रमेश।
मुदा गोकुला परम व्याकुला सबदिन रहिये गेल,
बनमाली माली व्रज कुंजक नहिओ दर्शन देल॥

[४०]

एतबे करुण न बात, बहल से विपति-बात भयकारी
आश-लता जड़ि सहित उजड़ि व्रजकें देलकै' दुखभारी
किछुए दिनुका बाद आबि आह्लादक बाधक रूपे
सुनि समाद ककरो सँ मथुरा केर नितान्त कुरूपे

[४१]

दुर्नय जरा-तनय अष्टादश खेप कैल उत्पाते।
मधुपुर घेरि परास्तो भऽ कऽ हो न समर सँ काते॥
तेँ मथुराकेँ त्यागि सकल पुरवासी सहित कन्हैआ।
बसल द्वारका जाय जानि सब बुझल डुबल निधि-नैआ॥

[४२]

कट दऽ रहितहुँ निकटक गामे दरसन पुन नहिं भेले।
दूर एते रहि औत कान्ह, विश्वास खगे उड़ि गेले॥
अमर-लती बनि तैओ आशा, हरि देखबाक पिपासा।
रहल बढबिते जैँ व्रजवासिक ठेसितहुँ वन्द न श्वासा॥

[४३]

उठितहिं वारिद श्याम, वृष्टिसँ पहिनहिं नोरक धारा।
नीलाम्बुजमे रुचिर श्याम-रुचि लखि करुणा साकारा॥
गोकुलमे हो दृश्य जनिक बिनु से गोवर्द्धनधारी।
मङ्गलमय महि-मण्डलकेँ कऽ बनथु 'मधुप' मनहारी॥

[४४]

मिथिला मण्डलस्थ कोविद कुल-कलिते कोइलख वासी।
कीर्त्ति-विशाल लाल ठाकुरसँ लालित कोर्थ निवासी॥
बुध बबुआमिश्रक सुत, साध्वी भामा उदरक जाते।
काशीकान्त मिश्र 'मधुप'क उपनामे कविमे ख्याते॥

[४५]

मित्र 'किरण' सँ क्रीड़ित, सुहृद 'सुमन'-सुखहित मधुगाने।
'राधा विरह' समापल राधाकृष्णक करइत ध्याने॥
बन्धु 'अमर' आ जेठ तनय मम ताराकान्तक यत्नेँ।
होइत प्रकाशित अवलोकित हो सित-सुकीर्त्ति बुधरत्नेँ॥

[४६]

तथा व्यथाक कथा रहितो ई जनिकर चित्त लोभौले।
समय समय पर तेँ जनिका सँ पुरस्कार कत पौले॥
सहृदय ताहि कृष्णनन्दनजी सिहक दान सम्पे।
हरिनन्दन-संस्मारक-निधिसँ छपबक खर्च अनूपे॥

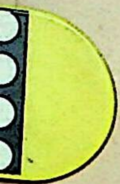
[४७]

पुरस्कारमे पञ्चशतक पुनि पाबि और किछु आश।
करइत राघोपुर ड्योढ़िक मनबय मङ्गल सोल्लास॥
आदि शक्ति दऽ शक्ति लिखाबथु आ निज भाषाऽऽसक्ति।
तेहन अमर पद अमर जकाँ पढ़ि हो अमरक अनुरक्ति॥

इति श्री कवि चूड़ामणि काशीकान्त मिश्र 'मधुप' कृत
राधा-विरह महाकाव्य समाप्त।








इन्दिरा

22, 23; 22,